संपत्ति-दान-यज्ञ

श्रीकृष्णदास जाजू

[अखि]ल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

परिचय

"संपत्ति-दान-यज्ञ" पुस्तिका का यह चौथा संस्करण है, जो इसकी लोकप्रियता, उपयोगिता आदि का परिचायक है। जब यह पहली बार गांधी-स्मारक-निधि, मध्यप्रदेश की ओर से प्रकाशित हुई थी, तब इसका रूप छोटा था। इन तीन संस्करणों में परिवर्द्धित-परिष्कृत होते-होते अब यह न सिर्फ अधिकृत ही हो गयी है, बल्कि अद्यतन भी। विनोबाजी के अब तक के इस विषय के विचारों का सार भी इसमें आ गया है।

इसमें संपत्ति-दान-यज्ञ पर व्यावहारिक दृष्टि से और विशेषतः संपत्तिवानों के लिए तर्कयुक्त विवेचन किया गया है। सर्वोदय-संमेलन का एतद् विषयक चर्चाओं का सार भी इसमें आ गया है।

इस पुस्तिका के चार विभाग किये गये हैं। पहले विभाग में गांधीजी का लिखा हुआ संपत्ति-दान से संबंध रखनेवाला एक लेख उद्धृत किया गया है। वह लेख संपत्ति-दान के लिए आधारभूत है। दूसरे विभाग में पू० विनोबाजी के अब तक के इस संबंध के लेखों व प्रवचनों से महत्त्वपूर्ण अंश संकलित किये गये हैं। ये अंश अलग-अलग प्रवचनों में से लिये जाने के कारण इस संकलन में विचारधारा का प्रवाह एक-सा बहता हुआ न दीखकर टुकड़ों के रूप में दीखेगा। तीसरे और चौथे विभागों का संपूर्ण विवेचन श्री जाजूजी का लिखा हुआ है। चौथे विभाग में व्यावहारिक बातों का दिग्दर्शन है।

आशा है, इस पुस्तक से संपत्ति-दान-यज्ञ का ठीक आशय समझने में मदद होगी।

वर्धा
१८-४-'५५

मंत्री
अ० भा० सर्व सेवा संघ

अनुक्रमणिका

संपत्ति-दान-यज्ञ

: १ :

समान-वितरण

समान-वितरण का सही आशय यह है कि हर एक मनुष्य को उसकी स्वाभाविक आवश्यकताएँ पूरी करने की ही साधन-सामग्री मिले, अधिक नहीं। मिसाल के तौर पर, किसी का हाजमा कमजोर है और उसको १० तोला रोटी काफी होती है तथा दूसरे को ४० तोले रोटी की जरूरत है, तो दोनों की आवश्यकताएँ पूरी हो सकनी चाहिए। इस आदर्श को अमल में लाने के लिए सारी सामाजिक व्यवस्था की पुनर्रचना करनी होगी। अहिंसक समाज इसके बदले किसी दूसरे आदर्श का संगोपन नहीं कर सकता। शायद हम इस आदर्श तक न पहुँच सकें, पर इसे सदा खयाल में रखकर इसके नजदीक पहुँचने के लिए हमें अनवरत प्रयत्न करते रहना चाहिए। जिस हद तक हम इस आदर्श की ओर बढ़ेंगे, उतना ही हमें संतोष और सुख मिलेगा और उतनी हद तक अहिंसक समाज को अस्तित्व में लाने की दिशा में हमारे द्वारा मदद होगी।

प्रारंभ कैसे हो ?

अब हम विचार करें कि समान वितरण अहिंसा के मार्ग से किस प्रकार हो सकता है। उस मार्ग में, उसके लिए, जिसने कि इस आदर्श को अपने जीवन का अंग बना लिया है, पहला कदम यह है कि वह अपने निजी जीवन में आवश्यक परिवर्तन कर ले। वह अपने दिल में भारत

की दरिद्रता का खयाल रखकर अपनी जरूरतें कम-से-कम कर लेगा, आजीविका कमाने में बेईमानी और सट्टे को स्थान नहीं देगा, अपना रहन-सहन जीवन के नये विचार के मुताबिक रखेगा। उसके जीवन के हर एक क्षेत्र में संयम होगा। अपने जीवन में जो कुछ सुधार करना शक्य है, वह कर लेने पर ही वह अपने साथी और पड़ोसियों में इस आदर्श का प्रचार करने लायक होगा।

धनिक संपत्ति के ट्रस्टी बनें

समान-वितरण के सिद्धान्त की जड़ में, निःसंदेह, धनिकों के पास जो अधिक संपत्ति है, उसके ट्रस्टीपन का विचार निहित है; क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार उन्हें अपने पड़ोसियों की अपेक्षा अधिक पैसा न रखना चाहिए। यह कैसे हो सकता है? अहिंसा के मार्ग से या धनिकों की संपत्ति छीनकर? दूसरी दशा में स्वाभाविकतया हमें हिंसा का सहारा लेना होगा। हिंसक कार्यवाही से समाज का लाभ नहीं हो सकता। उससे समाज दुर्बल होगा, क्योंकि जो लोग संपत्ति कमाने की शक्ति रखते हैं, उनके सद्गुणों से समाज को वंचित रहना पड़ेगा। इसलिए साफ है कि अहिंसक मार्ग बेहतर है। धनिक अपनी संपत्ति अपने अधीन रख सकेगा, जिसमें से वह अपनी जरूरतों के लिए जितना वाजिब हो, उतने का उपयोग कर सकेगा और बाकी की संपत्ति के बारे में समाज के हित में ट्रस्टी के तौर पर काम करेगा। इस बहस में ट्रस्टी की ईमानदारी मान ली गई है।

सत्याग्रह का स्थान

अगर हद दर्जे का प्रयत्न करने पर भी धनिक लोग सही तौर से गरीबों के संरक्षक नहीं बनते हैं और गरीब अधिकाधिक पिसकर भूख के शिकार बनते हैं तो क्या करना चाहिए? इस पहेली को सुलझाने के

प्रयत्न में ही मैं अहिंसक असहकार और सविनय अवज्ञा जैसे सही और अचूक साधनों पर पहुँचा हूँ। धनिक लोग गरीबों के सहयोग के बिना संपत्ति इकट्ठी कर नहीं सकते। अगर यह ज्ञान गरीबों में पहुँचकर फले, तो वे बलशाली बनेंगे और जिन विनाशकारी असमानताओं ने उन्हें भूख से मरने की स्थिति तक ला पटका है, उनसे वे अहिंसक साधनों द्वारा मुक्ति पाना सीख लेंगे।

'हरिजन', २५-८-'४० —गांधीजी

: २ :

सब संपति रघुपति कै आही

[विनोबाजी के समय-समय पर दिये गये प्रवचनों से सारांश रूप में यह संकलन किया गया है ।]

१८ अप्रैल, १९५१ के रोज भूदान-यज्ञ की कल्पना सूझी । अब तो देश भर में लोगों को यह कल्पना रुच गई है, ऐसा मान सकते हैं । भूमि-दान-यज्ञ के साथ-साथ संपत्ति-दान-यज्ञ भी क्यों न चलाया जाय, इसका मेरे मन में विचार तो चलता ही था, लेकिन भूमि का सवाल एक बुनियादी सवाल था, जिसके हल के बिना देश में मैं खतरा देख रहा था । इसलिए आरम्भ में उतना ही सवाल हाथ में लेना उचित लगा । अलावा इसके, भूमि परमेश्वर की सीधी देन है, इस बात को सब कोई सहज में समझ सकते हैं । वह उत्पादन का मूलभूत साधन है, इसलिए भी आरंभ में भूमि तक सीमित रहना अच्छा लगा । यथाक्रम एक-एक कदम उठाना अहिंसा की प्रणाली के अधिक अनुरूप था ।

लेकिन भूमि-दान-यज्ञ का कार्य जैसे-जैसे आगे बढ़ा, वैसे-वैसे संपत्ति का भी हिस्सा माँगे बगैर विचार की पूर्ति नहीं होती, यह बात भी स्पष्ट होती गई और आखिर मेरे मन में निश्चय हो गया कि संपत्ति का भी एक हिस्सा मैं लोगों से माँगूं । मैं चाहता तो हूँ कम-से-कम छठा हिस्सा, फिर लोग सोच-समझकर जो भी दें । संपत्ति चाहे हमने अपने पुरुषार्थ से कमाई हो, पर अपने लिए वह नहीं है, बल्कि सबके उपयोग के लिए परमेश्वर ने हमें वह सौंपी है, यह भावना इस माँग के पीछे है । जिस पुरुषार्थ-शक्ति से हमने संपत्ति कमाई, वह शक्ति भी परमेश्वर की देन है ।

अपनी पैदल-यात्रा के दौरान में मैं बार-बार कह चुका हूँ कि मैं पैसा लेना नहीं चाहता। लेकिन अब तो मैं संपत्ति का हिस्सा माँग रहा हूँ। इसका मेल कैसे बैठेगा? इसका उत्तर यह है कि न मैं संपत्ति अपने हाथ में लेनेवाला हूँ, न उसकी सँभाल की, खर्च की, हिसाब की कोई चिंता अपने ऊपर लेना चाहता हूँ। मैं तो मुक्त ही रहना चाहता हूँ। लोकोपकार के कामों के लिए बहुत-सी निधियाँ इकट्ठी की जाती हैं, जिनका कारोबार सार्वजनिक समितियाँ देखा करती हैं। ऐसा भी करने का मेरा विचार नहीं है। समय-समय पर भिन्न-भिन्न कामों के लिए इकट्ठी की जानेवाली उपयोगी निधियों में और इस संपत्ति-दान-यज्ञ में और भी एक महत्त्वपूर्ण भेद है। वह यह कि इस यज्ञ में संपत्ति का हिस्सा हर साल देना होगा। इसलिए मैंने यह सोचा है कि दाता के पास ही वह संपत्ति रहे। उसका विनियोग हमारे निर्देश के अनुसार वह करे और उसका हिसाब वह हर साल हमारे पास भेजे। इसका अर्थ यह हुआ कि देनेवाला न सिर्फ अपनी संपत्ति का हिस्सा देगा, बल्कि अपनी बुद्धि का भी उपयोग इसमें करेगा। हमारे निर्देश के अनुसार विनियोग करने की बात मैंने की है, लेकिन उसमें भी वह अपना सुझाव पेश कर सकेगा।

× × × ×

अगर आमदनी के आँकड़ों के बारे में हिसाब की कोई मुश्किल मालूम होती हो, तो मैं इसमें भी संतुष्ट रहूँगा कि लोग अपने गृहस्थी-व्यय का भी एक हिस्सा दें। मानिये कि किसी के दस लाख रुपये बैंक में पड़े हैं तो भले वे वहाँ पड़े रहें। उसमें से अगर वह घर-खर्च के लिए साल भर में ५० हजार रुपया उठायेगा तो उसका पाँचवाँ हिस्सा याने कुल खर्च का छठा हिस्सा, संपत्ति-दान में दिया जाय, तो भी काफी होगा। घर-खर्च में बच्चों की तालीम, प्रवास-खर्च, विवाह आदि सब

शुमार हो। छठा हिस्सा कोई न दे सके और आठवाँ देते हैं, या दसवाँ देते हैं, तो भी हम मान्य करते हैं, क्योंकि हम कोई टैक्स वसूल नहीं कर रहे हैं। लेकिन धनिक व्यक्ति; जो घर-खर्च में साठ हजार रुपया खर्च करता हो और शतांश याने छः सौ रुपया सालाना देना कबूल करे तो, वह बेकार माना जायगा। उसके लिए कुछ शोभादायक बात होनी चाहिए। इस तरह अगर सारे हिन्दुस्तान के घर-खर्च का षष्ठांश या, एक निश्चित अंश, हमें मिल जाता है, तो भी संपत्ति-दान का मूल-भूत विचार लोगों ने समझ लिया ऐसा होगा। दरिद्रनारायण को अपने घर में अधिकार का स्थान देना, यही मुख्य बात है।

खर्च का हिस्सा देने में यह एक कठिनाई हो सकती है कि यदि किसी को व्यापार में किसी साल घाटा आया हो, तो भी उसको संपत्ति-दान में अपना हिस्सा देना पड़ेगा।

जो व्यक्ति हिस्से की जगह सालाना निश्चित रकम देना चाहता है उसके बारे में यह विचार है कि जिसने १०१ रुपया देना कबूल किया, उसकी वह रकम उसके घर-खर्च का कितवाँ अंश है, यह वह बता दे तो अपना काम हो गया। इसमें इतना ही देखना होगा कि वह अंश उसके लिए शोभादायक है या नहीं।

गृहस्थी-खर्च का भी अंश हम जहाँ लेंगे, वहाँ उस खर्च का तफसी-लवार हिसाब देखने की हमें कोई जरूरत नहीं। उसका आँकड़ा वह बता दे, तो भी बस होगा। अंश लेने में हर साल रकम कम-बेसी होगी और इसलिए वह आजीवन भी दे सकेगा। निश्चित रकम आजीवन देना मुश्किल हो जायगा। अंश देने में सहूलियत है।

× × × ×

इस यज्ञ में हिस्सा लेनेवाले अपने परिवार के साथ मशविरा करके सबके संतोष से और पूरे प्रेम से इसमें हिस्सा लें। मैं मानता हूँ कि अगर

भक्तजन इस काम में योग देंगे तो एक जीवन-विचार के तौर पर यह कल्पना देश में फैलेगी और साम्ययोग की तरफ समाज की सहज गति होगी।

× × × ×

जाहिर है कि मैं इसमें दाता पर सारी जिम्मेदारी रख रहा हूँ और विश्वास से काम ले रहा हूँ। तार्किकों का इस पर आक्षेप हो सकता है। लेकिन धर्म-बुद्धि का विश्वास ही आधार है। विश्वास से जो संरक्षण मिल सकता है, वह किसी कानूनी काररवाई से नहीं मिल सकता। उस दृष्टि से संपत्ति-दान-यज्ञ की यह रीति मैंने निश्चित की है।

× × × ×

संपत्ति-दान का जो मुख्य विचार है कि जो कुछ संपत्ति है, वह भगवान् की है, उस विचार की हमें स्थापना करनी है और उसका साधन संपत्ति-दान है, साधन-दान नहीं। साधन-दान कार्य में मदद करनेवाला है, पर मुख्य विचार तो संपत्ति-दान का है, जो गरीब और अमीर सब पर लागू होता है। जो भी खाता है, उस पर लागू होता है। संपत्ति की प्राप्ति में किसी पर अन्याय न हो, प्राप्ति का तरीका गलत न हो, ठीक तरीके से संपत्ति प्राप्त हो, उचित और ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा समाज को देकर जो बचे, उसका सेवन किया जाय, और जो सेवन किया जाय, वह ट्रस्टी के नाते ही किया जाय, यह सारी वृत्ति इसमें आ जाती है।

× × × ×

अस्तेय और अपरिग्रह, दोनों के मेल से अर्थ-शुचित्व पूर्ण होता है, जिसके बगैर व्यक्ति और समाज के जीवन में धर्म की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

अर्थ-प्राप्ति की पद्धति का नियमन अस्तेय करता है, और उसकी मात्रा का नियमन अपरिग्रह करता है। अस्तेय कहता है कि शरीर का निर्वाह मुख्यतया शरीर-श्रम से, यानी उत्पादक परिश्रम से होना चाहिए। शरीर-श्रम के बगैर अगर हम अन्न खाते हैं, तो एक खतरा पैदा करते हैं।

दुनिया की बहुत-सी वर्तमान विषमताएँ, बहुत से दुःख और पाप शरीर-श्रम टालने की नीयत से पैदा हुए हैं। वैसी नीयत रखनेवाला गुप्त या प्रकट रूप से चोरी करता है। इसलिए अस्तेय-व्रत शरीर-श्रम द्वारा संपत्ति-निर्माण पर जोर देता है।

आज समाज में चोरी को पाप माना जाता है, फिर भी कुछ लोग चोरी करते हैं। पर चोरी करना अच्छा नहीं है, यह तो हमने मान लिया ही है न ? यह एक मूल्य हमारे समाज में स्थापित हो गया है। पर चोरी के समान संग्रह भी पाप है, यह अब समझना चाहिए। ये दोनों पाप हैं। अस्तेय और अपरिग्रह हमें सीखने हैं। मैं कई दफा कहता हूँ, कंजूस चोर के बाप होते हैं। अगर कंजूस और संग्रह करनेवाले न हों, तो चोरी ही न होगी।

× × × ×

अपहरण और परिग्रह

मैं जिस विचार को चलाना चाहता हूँ, उसके विरुद्ध जो विचार समाज में आज चल रहा है, उसको अपहरण कहते हैं। अपहरण के विचार में विश्वास करनेवाले मानते हैं कि आखिर व्यक्ति समाज के लिए होता है और समाज के लिए व्यक्ति की संपत्ति का अपहरण करने में कोई दोष नहीं, बल्कि व्यक्ति की संपत्ति के अपहरण को

रोकनेवाला विचार ही गलत है। आज उस विचार की ओर दुनिया के कई देश आकर्षित हुए हैं। उसके विरुद्ध मैं अपरिग्रह का विचार रखता हूँ। अक्सर ऐसा माना जाता है कि अपरिग्रह तो गांधीजी, विनोबा या ऐसे संन्यासियों के लिए ही है और सामान्य जनता के लिए तो परिग्रह ही है। इसलिए लोग संन्यासियों का आदर तो करते हैं, परन्तु कहीं-कहीं तो उन्हें अपने घर में भी प्रवेश नहीं करने देते। संन्यास को अन्तिम आदर्श के तौर पर मानते तो हैं, लेकिन गृहस्थ-जीवन में परिग्रह ही चलता है। धर्मविचार को इस तरह खंडित करने से उसका सीमित लाभ ही हो सकता था। नतीजा यह हुआ कि लोभी का मुकाबला करते समय निर्लोभी भी लोभी बन गया। क्षत्रियत्व को मिटाने के लिए खुद क्षत्रिय बनकर अपने काम में असफल होनेवाले परशुराम का उदाहरण तो हमारे सामने है ही। जिसका मुकाबला करना है, उसीका शस्त्र हम स्वीकार कर लें, तो हम उसके स्थूल रूप को चाहे मार सकें, पर सूक्ष्म रूप में उसे अमर कर देते हैं। आज दुनिया में लोभ का, परिग्रह का राज है। परिग्रह के इर्द-गिर्द ऐसे कानून खड़े किये गए हैं कि परिग्रह गलत नहीं माना जाता। चोरी को हम गुनाह मानते हैं, पर जो संग्रह करके चोर को प्रेरणा देता है, उसकी कृति को चोरी नहीं मानते। उपनिषदों की कहानी में राजा कहता है, "मेरे राज में न तो कोई चोर है, न कंजूस।" क्योंकि कंजूस ही चोरों को पैदा करते हैं ! चोरों को तो हम जेल भेजते हैं और उनके पिता को मुक्त रखते हैं ! वे शिष्ट-प्रतिष्ठित बनकर गद्दी पर बैठते हैं। यह कैसा न्याय है ? गीता ने भी उन्हें चोर कहा है। लेकिन हमने तो आज गीता को संन्यासियों की किताब कहकर उससे भी संन्यास ले लिया है।

× × × ×

अपरिग्रह से सांसारिक शक्ति

खासकर हमें एक चीज देखनी है कि अपरिग्रह में शक्ति भी है। अपरिग्रह में शुद्धि है, इसका भान तो हमें रहा है, लेकिन उसमें शक्ति है इसका भी खयाल करना चाहिए। उसमें सांसारिक शक्ति है जिससे उत्तम जीवन चलता है। मान लो कि गांधी-स्मारक-निधि के दस करोड़ रुपये इकट्ठे हुए हैं, उसके बदले सौ करोड़ इकट्ठे होते तो उससे क्या होता ? हमारी पद्धति में तो घर-घर में बैंक हो जाता है। उसकी शक्ति की कोई सीमा नहीं। आदान-प्रदान भी उसमें स्थानिक ही होता है। इसलिए वह अति सुलभ योजना बन जाती है, और उसमें से सीधी सामूहिक शक्ति पैदा होती है, रचना होती है, संघटना होती है। त्याग और समता का महत्त्व हमने माना है, लेकिन ये सब शक्तियाँ हैं, इस दृष्टि से हमें सोचना होगा, समझना होगा।

× × × ×

समाजाय इदम्

जिस तरह हम यज्ञ में आहुति देते समय कहते हैं कि "इंद्राय इदम् न मम—यह मेरा नहीं है, इंद्र के लिए है" उसी तरह आज हम जो कुछ उत्पादन करते हैं, चाहे वह खेती में हो, चाहे फैक्टरी में, उसके बारे में कहना चाहिए कि "समाजाय इदम्, राष्ट्राय इदम्, न मम—यह सब मेरे लिए नहीं है, समाज के लिए है, राष्ट्र के लिए है।" अपने पास जो भी कुछ है वह सब समाज को अर्पण करना चाहिए। फिर समाज की ओर से अपनी आवश्यकता के अनुसार जो कुछ मिलेगा, वह अमृत होगा।

बचपन से हम पर अनेकों के उपकार हुए हैं। उनसे उऋण होने के लिए शरीर-परिश्रम के मान्य तरीके से जो हमने कमाया हो, उसका

हिस्सा समाज को देना लाजमी हो जाता है। उसमें सम्यक्-विभाजन का उद्देश्य होता है।

हम छठा हिस्सा माँगते हैं, तो क्या पाँच-बटा-छः का संग्रह मान्य करते हैं? पर हमारे मान्य करने का सवाल ही नहीं है। वह भला मनुष्य छः-बटा-छः संग्रह ही मान्य कर रहा है। उसकी उस मान्यता को हम धक्का देते हैं, एक-बटा-छः माँगकर उसको हम विचार के लिए प्रेरित करते हैं। भक्तों ने कहा था, "जिसने 'हरिनाम' एक दफा बोल लिया, उसने मोक्ष-प्राप्ति के लिए कमर कस ली।" जिसने एक-बटा-छः समाज को निरंतर अर्पण करने का नियम, जीवन-निष्ठा के तौर पर, कबूल किया, उसने अपनी सारी संपत्ति, अपना सारा जीवन, यहाँ तक कि अपना शरीर-निर्वाह भी, समाज को अर्पित करने के लिए कमर कस ली। संपत्ति-दान-यज्ञ की तरफ देखने की यह दूरदर्शी दृष्टि है।

× × × ×

त्याग-बन्धन और भोग-बन्धन

बहुतों को यह विचार ही कठिन मालूम होता है कि जिन्दगी भर छठा या आठवाँ हिस्सा दान दें। लेकिन वे यह नहीं सोचते कि वे एक दफा शादी कर लेते हैं तो जिन्दगी भर के लिए ही तो अपने को बाँध लेते हैं! हिंदू धर्म ने संन्यास की छूट रखी है, फिर भी जो मनुष्य गृहस्थी के आमरण बंधन में रहते हैं, वे इस थोड़े-से देने के बंधन से भी क्यों हिचकिचाते हैं? इसलिए शुद्ध विचार करनेवाले इस चीज को जीवन का अंग समझ लें। जिस तरह जिन्दगी भर स्वच्छ हवा और स्वच्छ आहार हम लेते हैं, उसी तरह जीवन भर अपनी संपत्ति का एक हिस्सा लोगों को हमें देना है। दरअसल सारा-का-सारा ही देने

की बात होनी चाहिए, पर ट्रस्टी के नाते अपने पास वे कुछ रख लें और बाकी का सारा दे दें।

× × × ×

हम यह जो मालकियत मिटाना चाहते हैं, वह संविधान के विरोध में है, ऐसा लोग कहते हैं। हम कहते हैं, क्या संविधान देवों का बनाया हुआ है ? जैसे-जैसे मनुष्य का विचार बदलेगा, वैसे-वैसे उसका संविधान भी बदलेगा। यह बात तो नहीं कि कोई चीज हम जबरदस्ती लादना चाहते हैं ! समझाने का हमारा हक है और समझने का लोगों का कर्तव्य है। अगर वे समझ गये तो क्या उसका मतलब यह होगा कि संविधान का उन्होंने विरोध किया ? हम तो समझते हैं कि संविधान दिन-ब-दिन विकासशील होना चाहिए। मालकियत की भावना मिटनी ही चाहिए, क्योंकि हमारे पास अधिक बुद्धि, अधिक शक्ति, अधिक महत्त्वपूर्ण काम है, इसलिए हमें अधिक पैसा मिलना चाहिए, यह जो पैसे का नाता जिम्मेदारी के साथ जोड़ दिया गया है, इसे ही हम गलत समझते हैं।

यह बात जिन मित्रों को हृदयंगम होगी, उनसे मैं आशा करूँगा कि वे चाहे गरीब हों चाहे धनी; चाहे भोगी सांसारिक हों, चाहे त्यागी कार्यकर्ता; संपत्ति-दान-यज्ञ में खुद दीक्षित हों और इस विचार का प्रत्यक्ष कृति से अधिक संशोधन करें।

मेरे काम के बारे में किसी प्रकार की गलतफहमी न रहे। यह एक धर्म-विचार है। मनुष्य को आसक्ति से छुड़ाकर अपरिग्रही बनाना मेरा उद्देश्य है। इसलिए जो बड़े-बड़े परिग्रही हैं, उन्हीं के पास दान माँगने के लिए पहुँचना है, ऐसी बात नहीं है। आसक्ति तो एक लँगोटी में

भी रह सकती है। इसलिए हर एक व्यक्ति के पास पहुँचकर विचार समझाना है और दान-पत्र हासिल करना है।

× × × ×

संपत्ति-दान-यज्ञ बहुत गहरी चीज है। हम भूदान-यज्ञ में हर एक से भूमि माँगते हैं। खास दान-पत्र लेते हैं, उस पर उसके हस्ताक्षर आदि लेते हैं, सरकार उसे मंजूर करती है, तब वह अमल में आता है। वैसी पूरी योजना इस यज्ञ में नहीं है। इसलिए जो व्यक्ति दान-पत्र लिखकर देगा, वही अपने अंतर्यामी भगवान् को साक्षी रखकर अपना वचन पालन करेगा और हिसाब भी रखेगा। उस दान का पूर्ण उपयोग हमारे कहने के अनुसार करने की जिम्मेदारी उसी पर है। यह भूमि के समान एकबारगी दान देने की बात नहीं है। हर साल हिस्सा देना पड़ेगा। अतः उसको अपना जीवन नैष्ठिक बनाने का काम करना होगा। अंदर की निष्ठा जगनी चाहिए।

× × × ×

"सब संपति रघुपति कै आही।" तब छठा हिस्सा देने की बात गौण है। होना तो यह चाहिए कि अपना सब कुछ समाज को देना चाहिए और फिर अपने शरीर के लिए उसमें से थोड़ा-सा लेना चाहिए। परन्तु अभी समाज में इस तरह का इन्तजाम नहीं है और तुरन्त होनेवाला भी नहीं है। इसलिए अभी छठा हिस्सा दे दिया जाय और बाकी जो बचे, उसमें से और देने का सोचा जाय। छठा हिस्सा देने का मतलब यह है कि जीवन के लिए एक निश्चय करके वह देना है। उतना हिस्सा नहीं देते हैं तो हम भी पापी बनते हैं और हमारा जीवन भी पापी बनता है। इसलिए देना कर्त्तव्य मानना चाहिए। दूसरा कितना देता है, इसकी चिन्ता हमें नहीं करनी चाहिए। बल्कि स्वयं हमने कितना

दिया है, इसकी ओर ध्यान देना चाहिए। दूसरे की परीक्षा करने की यह बात नहीं है। यह निजी शुद्धि की और अपने कर्त्तव्य की बात है। यह आध्यात्मिक काम, आत्म-संतोष का काम है, ऐसा भान होने के बाद ही संकल्प करना चाहिए।

× × × ×

अगर हमें कोई जीवन भर छठा हिस्सा देते रहें, तो भी हम यह नहीं समझेंगे कि उन्होंने हमारा पूरा विचार समझा ही है। अगर उनके पास कोई विशेष उद्योग है, तो जो उद्योग चलता है, उसमें काम करनेवाले, सबका साझा है। अतः सबको अपना-अपना हिस्सा मिले और हिस्सा मिलने के बाद जो बाकी बचे, उसे सेवा-कार्य में दिया जाय। यह जिसने समझ लिया, संपत्तिदान का विचार समझ लिया, ऐसा होगा। इस तरह करनेवाला यदि थोड़ा भी खाता है तो उसका वह खाना भी यज्ञ होगा, आहुति-स्वरूप होगा। इस तरह अपना सारा जीवन यज्ञमय बनाने का विचार ह और गांधीजी की तीव्रतम भावना थी कि संपत्ति का हर कोई ट्रस्टी हो। वह बात इसी से पूरी होगी। इसे हम आधुनिकतम अर्थशास्त्र समझते हैं, जो वास्तव में सच्चा अर्थशास्त्र है।

× × × ×

समानता की कल्पना

कारखाने के मालिक और मजदूर दोनों के हित परस्पर विरोधी क्यों समझे जायँ ? यह कभी देखा है कि एक अखिल भारतीय बेटों की संस्था हो, और दूसरी अखिल भारतीय बापों की ? और वे दोनों संस्थायें अपने-अपने हित की रक्षा के लिए एक-दूसरे के विरोध में काम करें ! आज तो शिक्षक और विद्यार्थियों के संघ बनते हैं, ऐसा मानकर कि

हमारे हित परस्पर विरोधी हैं। यह सब विपरीत बुद्धि है। आसुरी संपत्ति के लक्षण हैं। शारीरिक श्रम करनेवाले भी हमारी संपत्ति के सहभागी हैं, यह विचार हम संपत्तिवालों को समझाना चाहते हैं।

व्यापार में जिस प्रकार साझा होता है, उस प्रकार मजदूर और मालिक का साझा क्यों न हो? हाँ, यह साफ है कि मैं समानता की बात कर रहा हूँ। तो शहरवालों को मैं यही समझाऊँगा कि ग्रामों में से आपने भर-भरकर पाया है। अतः गाँववालों का भी अपनी संपत्ति म एक हिस्सा समझो। केवल एक-मुश्त दान देकर छूट जाना मत चाहो। किसी धर्मकार्य से आदमी छूटना नहीं चाहता। पापकार्य से छूटना चाहता है। तो मैं संपत्ति-दान देनेवालों से कहता हूँ कि क्या यह पापकार्य है जो आप छूट जाना चाहते हैं? इसे धर्मकार्य समझकर बार-बार करते रहें, जीवन भर करते रहें। लोग कहते हैं कि यह बहुत कठिन है। लेकिन मैं कहता हूँ कि कठिन नहीं है। एक आदमी ने कहा कि हम हर महीने आपको पच्चीस रुपये देंगे और जिंदगी भर देते रहेंगे। मैंने कहा, यह ठीक नहीं है। अगर कल आप दरिद्र बन गये, तो आपको अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी होगी। लेकिन निश्चित रकम के बदले में अगर आप अपना छठा या कोई भी हिस्सा देने का तय करेंगे, तो उसका जीवन भर पालन करना आपके लिए शक्य होगा। फिर आपको अगर आधी रोटी ही खाने को मिली तो उसमें से भी छठा हिस्सा आप दे देंगे। इस प्रकार यदि मेरा विचार समझ में आ जाय तो उसका बोझ नहीं महसूस होगा। जिस प्रकार आदमी को शरीर का बोझ नहीं लगता, उसी प्रकार धर्म का बोझ भी नहीं लगना चाहिए। धर्म-विचार जीवनदायी विचार होता है।

× × × ×

संपत्तिदान-यज्ञ उतना ही गहरा है, जितना भूदान-यज्ञ। जमीन हर एक के पास नहीं होती, परन्तु सम्पत्ति तो हर एक के पास होती ही है और जमीन संपत्ति का ही एक प्रकार है। संपत्ति में बुद्धि, शक्ति, पैसा सब कुछ आता है।

किसी के पास कम है, तो भी हम चाहते हैं कि वह अपनी अपर्याप्त रोटी में से थोड़ी-सी रोटी गरीब के लिए दे। इसका मतलब यह है कि हम अपने घर में एक को प्रवेश देते हैं। इसलिए यह बहुत सोच-विचार की बात है। इसका मतलब यह होता है कि हर एक को अपना जीवन थोड़ा-सा मितव्ययी करना पड़ेगा। कई लोगों को तो अपने पेट में से काटकर भी कुछ देना पड़ेगा। वह अपने कुटुम्ब का खर्च तो चलायेगा ही, पर उसके साथ दरिद्रनारायण की भी फिक्र रखेगा। यह एक धर्म-विचार है और समझ-बूझकर इस पर अमल करना है। हिन्दुस्तान में दान की परम्परा चली आई है। भूखे को खिलाकर फिर खायेंगे, इसी को दान कहते हैं। इसी में हमारी खानदानी है। आज यह कुछ कम हो गया है और शहरों में तो बहुत ही कम हो गया है। लेकिन मैंने कहा है कि जो गुण आज तक व्यक्तिगत रूप में थे, उन्हें अब सामाजिक रूप देना है।

कुछ गुणों का विकास ही नहीं हुआ है और वही हमें करना है। दया का विकास हुआ था, परन्तु दया का मतलब यह था कि दूसरों का दुख हमसे न सहा जाता, न देखा ही जाता था इसलिए कुछ देने की प्रेरणा हो जाती थी और ऐसे मौके पर मदद करने की स्फूर्ति हो जाती थी। यही आज तक दया का स्वरूप रहा। लेकिन अब उसे नित्य जीवन का एक अंग बनाना है। जिस तरह हम रोज नहाते हैं उसी तरह कुछ विचारों को भी रोज अमल में लाना है। मनुष्य यह नहीं सोचता कि जब मैं गंदा हो जाऊँगा तभी नहाऊँगा, बल्कि वह रोज नहाता

है। दया को हम व्यापक करते हैं तो उसका विकास होता है। क्या हम अपने भाइयों पर या लड़कों पर दया करते हैं? हम तो उनका हक मानते हैं और हक मानकर उन्हें जो चाहिए सो दे देते हैं। यह रोज करने की बात है। जहाँ दया को सार्वजनिक रूप देते हैं वहाँ दूसरे की चिन्ता करना आ जाता है।

अगर समत्व का अमल करेंगे तो दया आयेगी। जहाँ दया को सार्वजनिक रूप देना है वहाँ समत्व, समविभाजन आ जाता है।

× × × ×

संपत्ति-दान का स्वरूप

यह साफ समझ लेना चाहिए कि संपत्तिदान-यज्ञ में कोई निधि इकट्ठी करने की कल्पना नहीं है। इस यज्ञ की यही विशेषता है। यदि कहीं एक जगह निधि इकट्ठी करने की कल्पना होती, तो उसे यज्ञ नहीं कहा जाता। 'यज्ञ' शब्द इसमें निरर्थक नहीं जोड़ा गया है। पूरा समझ-बूझकर जोड़ा गया है। यह एक ऐसा विचार है कि जिससे कोई बचता नहीं। हर एक को इसमें आहुति देने का मौका मिलता है। जो धर्म-कार्य सबको लागू होता है, जैसे सत्य वगैरा, जो अक्षरशः सार्वजनिक है, यानी सब लोगों के लिए है, उसीको मुख्य धर्म या प्रथम धर्म कहा जाता है। 'नः तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्'। तो संपत्तिदान-यज्ञ आजकल की दूसरी निधियों से बिल्कुल भिन्न है। उसमें हम दान-पत्र लेते हैं, पैसे नहीं। दान का विनियोग दाता खुद ही गरीबों की सेवा के लिए करता है। लेकिन गरीबों को भी वह पैसे के रूप में मदद नहीं करेगा। कुछ लोगों ने यह शंका उठायी है, और वह ठीक भी है कि पैसे का दुरुपयोग होगा। लेकिन संपत्तिदान में तो किसी व्यक्ति के लिए पैसे का उपयोग होगा ही नहीं। सामुदायिक कामों के लिए हो सकता है, जैसे कुएँ के लिए सिमेंट खरीद ली, या

दो-तीन किसानों को मिलाकर एक बैलजोड़ी दे दी। अब यह कल्पना करना कि वह बैलजोड़ी भी बेच देगा और फिर उस पैसे का दुरुपयोग करेगा, कुछ अधिक कल्पना है। हमारी सद्भावना से उसके हृदय में भी सद्भावना पैदा होगी, इस श्रद्धा से हम लोग चलते हैं। यह कोई "अंध-श्रद्धा" नहीं, "अनुभव-श्रद्धा" है। जब हम लोग हर गाँव में पहुँचकर घर-घर से छठा, आठवाँ या दसवाँ हिस्सा लेंगे, तब उनसे कोई पैसा तो नहीं लेंगे। लोग अनाज देंगे, दूसरी कोई चीज देंगे। यह जो चीजें मिलेंगी, वह भी समूह को मिलेंगी, गाँवों को मिलेंगी, और इस प्रकार गाँव-गाँव में सामूहिक लक्ष्मी इकट्ठी होगी। मैं पैसा या संपत्ति शब्द इस्तेमाल नहीं करता, क्योंकि उसमें गलतफहमी होने की संभावना है। मैं लक्ष्मी कह रहा हूँ। मसलन्, बढ़ई पाँच हल बना देगा, दूसरा कोई दूसरे साधन देगा। तो वह सब मिलाकर सामूहिक लक्ष्मी ही बनेगी। यही चीज हम गाँव में कहेंगे और यही शहरवालों को भी समझावेंगे। उनसे कहेंगे कि आपकी संपत्ति में दूसरों का भी हिस्सा है। आप अपने आपको उसका मालिक क्यों समझते हैं? आप भी अपनी संपत्ति के एक हिस्सेदार ही हैं। ऐसा क्यों समझते हैं कि आपका और समाज का कोई विरोध है?

दाता के वचन पर ही भरोसा

एक अखबारवाले ने मुझ पर व्यंग्य किया था कि विनोबा को तो न जमीन चाहिए, न संपत्ति। उसे तो केवल दानपत्र चाहिए। यह तो कागज माँगनेवाला देव है। फूल से संतोष माननेवाले देवों को जिस तरह तुम फूलों की माला चढ़ा देते हो, उसी तरह इसके गले में दान-पत्र डाल दो, तो तुम्हारी "खरचत नहीं गठरी भजो रे भैया राम गोविंद हरि।" उसने तो खैर व्यंग्य किया था, लेकिन दरअसल बात वही

है। हमारे दिल में उस आदमी के पैसे के बनिस्वत उसके वचन की कीमत कहीं अधिक है। संपत्ति-दान में आज तो यह संरक्षण है कि उसका विनियोग कैसे होगा, इसका निर्देश मैं दूंगा। लेकिन जब करोड़ों दान इस प्रकार मिलने लगेंगे, तब निर्देश देना भी संभव नहीं होगा; तब तो अपने आप बँटवारा होने लगेगा।

× × × ×

संपत्ति-दान-यज्ञ-मार्गदर्शन

(१) संपत्ति-दान की रकम हर एक को अपने पास ही रखनी है, या किसी परिचित के पास। (२) जो हिस्सा देना है, वह जीवन भर देना है। इसलिए परिवार के जिम्मेदार लोगों की अनुमति से यह काम होना चाहिए। (३) कर्जदार को इसमें गुंजाइश नहीं है। कर्ज में से मुक्त होना उसका पहला काम होगा। (४) संपत्ति का विनियोग मेरी सूचनानुसार करना है। इस सारी योजना का यह एक बहुत बड़ा संरक्षण है। (५) संपत्ति-दान-यज्ञ में प्राप्त होनेवाली उस वर्ष की रकम उसी वर्ष में खर्च होगी। बाकी रहने का कारण नहीं। देश में इतना विशाल काम करना है कि कितनी भी संपत्ति मिले तो भी सारी उसमें सहज खर्च होनेवाली है। (६) संपत्ति का विनियोग फिलहाल मुख्यतया तीन मदों पर करने का सोचा है: (अ) जिन भूमिहीन किसानों को जमीन दी जायगी उनको बीज, बैल, कुआँ आदि के रूप में मदद करना, (आ) त्यागी सेवक-वर्ग को अल्पतम सेवा-धन देना, (इ) सत्साहित्य का प्रचार करना। (७) संपत्ति-दान यज्ञ में हिस्सा देनेवाले के जीवन का परिचय मैं चाहता हूँ। उसके लिए इस यज्ञ में सम्मिलित होने की इच्छा रखनेवालों को अपनी कुछ जानकारी मुझे भेजनी चाहिए।

—विनोबा

: ३ :

संपत्ति-दान-यज्ञ

(श्रीकृष्णदास जाजू)

प्रास्ताविक

अब सारा देश भूदान-यज्ञ से परिचित हो गया है। जब कार्यकर्ता लोग जमींदारों से भूदान-यज्ञ के लिए जमीन माँगने जाते थे, तब कुछ जमींदार यह प्रश्न करते थे—जैसे हमसे जमीन माँगी जाती है, वैसे ही जो धनिक लोग हैं और जिनके पास करोड़ों की संपत्ति पड़ी है, उनसे उनकी संपत्ति का हिस्सा क्यों नहीं माँगा जा रहा है ? वास्तव में संपत्तिदान-यज्ञ भूदान-यज्ञ के गर्भ में था ही, अब तक उसने प्रकट रूप नहीं लिया था। दोनों यज्ञों में से प्रथम केवल भूदान का ही प्रारम्भ क्यों हुआ, इसका खुलासा पूज्य विनोबाजी ने कई बार किया है और हर कोई समझ सकता है कि जमीन का प्रश्न कुछ विशेष और निराला ही है। ईश्वर ने जमीन पैदा की, मनुष्य को भी पैदा किया, मनुष्य के जीवन का आधार जमीन ही है। पर उससे आजीविका तब ही मिलती है जब शरीर-श्रम द्वारा उससे कोई चीज पैदा की जाय। हवा और पानी की तरह जमीन पर भी किसी की व्यक्तिगत मालिकी रहना न्याय्य नहीं है। जमीन समाज की ही समझी जाय। ईश्वरी संकेत तो यह दीखता है कि मनुष्य जमीन पर मेहनत कर अपना जीवन चलावे और जो वैसा शरीर-श्रम करे, उसे उसका पूरा फल भी मिले। पर मनुष्य की गलत करतूत के कारण कुछ ऐसा हो गया है कि उनके पास बड़ी तादाद में जमीन इकट्ठी हो गई है, जो जमीन पर श्रम नहीं करते।

जो जमीन जोतते हैं या जोतना चाहते हैं, उनमें से बहुतों के पास अपने गुजारे के लिए भी मालिकी हक की जमीन नहीं है। फलस्वरूप उनको अपने श्रम के फल का एक बड़ा हिस्सा तथाकथित मालिक को दे देना पड़ता है। इसलिए भूमिहीनों को भूमि देने का प्रश्न पहले हाथ में लेना उचित ही था और बहुत-से काम एक साथ हाथ में लेने से कोई एक भी पूरा नहीं सधता। मनुष्य की शक्ति परिमित है, इसलिए एक काम हाथ में लेकर उसी के पीछे पड़ने से उसके सफल होने की आशा रहती है। अब, जब कि भूदान-यज्ञ का काम काफी मात्रा में चल निकला है और उसके सफल होने में शंका नहीं रही है, तब यह बात स्वाभाविक-तया सामने आती है कि जमीन की तरह दूसरी संपत्ति भी व्यक्तिगत मालकियत की न मानकर समाज की मानी जाय। अर्थात् जो सिद्धांत भूदान के पीछे है, वही अन्य संपत्ति पर भी लागू हो। इसके अलावा जिन्हें यज्ञ की जमीन दी जाती है, उन्हें साधन-सामग्री मुहैया कर देने के लिए धन की आवश्यकता भी है। समय पाकर संपत्तिदान-यज्ञ का धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन भी भूदान-यज्ञ की तरह जोरों से चल पड़ेगा। अतः विनोबा ने इस विषय में जो कुछ प्रवचन दिये हैं उनका बारीकी से अध्ययन कर लेना जरूरी है। इस पुस्तिका में उनके प्रवचनों में से कुछ अंश प्रारम्भ में दिये गए हैं। मैं जब भूदान-यज्ञ के प्रचार के लिए घूमता था, तब भूदान-यज्ञ के साथ संपत्ति-दान-यज्ञ के बारे में भी जो विचार मेरे मन में उठे, वे इस पुस्तिका में संक्षेप में लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। विशेषकर मेरा निवेदन धनिक व्यक्तियों से है। प्रायः जो परम्परा चलती है, उसे हम सही मान लिया करते हैं। उसकी जड़ में जाने का प्रयत्न नहीं करते। अगर उसकी जड़ की खोज करें तो शायद हमें अपने विवेक से ही मालूम हो जाय कि अब तक की मानी हुई अनेक मान्यताएँ कितनी गलत थीं। यहाँ मैं कुछ विचार धनिकों के

सामने उनके चिन्तन के लिए रखता हूँ, इस आशा से कि वे खुद सोचें कि सम्पत्ति कमाने और उसे अपने पास रखने और उसके उपयोग के बारे में जो कुछ हमारे विचार बने हैं वे कहाँ तक सही हैं। इसी प्रकार के मनोमंथन से मनुष्य अपनी आध्यात्मिक प्रगति करता है।

'दान' और सम्पत्ति का स्वामित्व

इन यज्ञों में जो 'दान' शब्द का उपयोग किया गया है, उसका अर्थ समझ लेना आवश्यक है। अब तक 'दान' शब्द से यही माना जाता रहा है कि एक व्यक्ति दूसरे को दया कर कुछ दे या अपने पारलौकिक कल्याण के लिए कुछ खर्च करे। विनोबाजी ने बताया है कि शंकराचार्यजी ने 'दान' का अर्थ 'संविभाग' किया है। संविभाग यानी सम्यक् विभाग —वाजिब बँटवारा, जैसा कि संयुक्त कुटुम्ब में भाइयों में हक से होता है। इस अर्थ में विनोबाजी इस शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। प्रचलित दान के अर्थ में यह बात मानी गई है कि जिस चीज का दान किया जाता है, दाता उसका मालिक है और अपने पास रखने का उसे अधिकार है। पर भूदान-यज्ञ में यह आशय है कि हमारे पास जो आवश्यकता से अधिक जमीन है उस पर हमारा अधिकार नहीं है। कई कारणों से वह हमारे पास आ गई, अब तक हमने उसे अपने पास रखा, यह भूल हुई, जिसे दुरुस्त करना है। इसी प्रकार दूसरे पक्ष में जिस भूमिहीन को जमीन दी जाती है, वह यह न माने कि दीनता या दरिद्रता के कारण जिस चीज पर उसका हक नहीं है, उसको वह दूसरों की मेहरबानी के रूप में ले रही है। उलटे यह समझकर ले कि वह पाने का उसे हक है।

अधिकार में अनधिकार कैसे ?

अभी जो संपत्ति के बारे में विचार-प्रणाली चल रही है, उसको देखते हुए ऊपर का कथन कुछ अजीब-सा लगता है। संपत्ति का मालिक

समझता है कि मैंने मेहनत करके, चाहे वह शारीरिक हो या बौद्धिक, संपत्ति कमाई, किसी की चोरी नहीं की, कानून ने जो साधन उपलब्ध कर दिये हैं, उनके अनुसार ही धन कमाया। उसे भोगने का मेरा अधिकार है। यह मेरा अधिकार कानून ने मान रखा है, समाज भी मानता है। इस दशा में उस संपत्ति पर मेरा अधिकार नहीं है, यह बात जँचती नहीं। इसी प्रकार जिसको दान मिलेगा, उसने वह जमीन या संपत्ति कमाने के लिए परिश्रम नहीं किया, उससे उसका कोई संबंध नहीं आया और कानून से उसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता, इस दशा में उसका हक है, यह बात कैसे मानी जाय ? केवल कल्पना से व्यावहारिक काम कैसे चल सकता है ? बिना कमाये किसी का किसी चीज पर हक कैसे हो सकता है, जब कि कानून उसका समर्थन नहीं करता ?

कानून और मान्यता की अपेक्षा न्याय सर्वोपरि है

हम इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करें। कानून और समाज की मान्यता का मूल्य आँकना होगा। भूलना न चाहिए कि कानून और मान्यता के अलावा न्याय भी एक चीज है, जो सर्वोपरि है। उसका अधिकार कोई मेट नहीं सकता, क्योंकि उसकी जड़ बाहर न होकर अन्तरंग में, आत्मा में, मनुष्य की सदसद्विवेक बुद्धि में है। इस संबंध में यह बात खयाल में रखनी चाहिए कि किसी समय-विशेष में समाज की या कानून की जो धारणा रहती है, वह ठीक ही रहती है, ऐसा नहीं है। कानून तो बहुधा प्रचलित परम्परा को लेकर चलता है। समाज की मान्यता भी बहुत करके रूढ़ि को लेकर चलती है। जो बात कानून या समाज मानता है, वह सदा न्याय की ही होती है, ऐसा नहीं कह सकते। दीर्घ काल के इतिहास का परीक्षण करने से मालूम होगा कि एक जमाने में जो मान्यताएँ सही मानी जाती थीं, उनमें समय पाकर आमल परि-

वर्तन हो गया। मान्यताओं के बदलने के साथ कानून भी बदल गया। जब तक मान्यता चलती रही, तब तक उसके सही होने के बारे में किसी के मन में शंका नहीं थी, अगर थोड़ों के मन में शंका रही होगी तो उसका उस समय की विचारधारा पर कोई असर नहीं पड़ा। समय पाकर विवेक जागृत हुआ, मनुष्य ने देखा कि जो बात आज मानी जाती है, वह घोर अन्याय की है। अन्त में परिवर्तन होकर रहा। मान्यता बदलने पर राजसत्ता को कानून भी बदलना पड़ता है। अगर राजसत्ता वैसा न करे तो वह टिक नहीं सकती। विवेक जागृत होने पर अर्थात् गलती दीख पड़ने पर मान्यता कितनी ही पुरानी और व्यापक क्यों न हो, उसे बदलना पड़ता ही है। स्पष्टीकरण के लिए एक-दो उदाहरण लें।

गुलामी की प्रथा हजारों वर्षों तक और जगत् भर चलती रही। उस लंबे अरसे में विद्वान्, तत्त्ववेत्ता और साधु-संतों के रहते हुए भी वह चलती रही। एक बड़े नामी तत्त्ववेत्ता ने तो उसका समर्थन भी किया था। कुछ गुलाम लोग खुद भी मानते थे कि वह प्रथा उनके हित की है। फिर भी मनुष्य का विवेक जागृत हुआ। अपने जैसे ही हाड़-मांस के और सुख-दुःख की भावना रखनेवालों को एक दूसरा बलवान् या धनवान् मनुष्य गुलामी में जकड़ रखे, क्या यह बात न्याय्य है, ऐसा प्रश्न सामने आया। इसको हल करने के लिए आपस में युद्ध भी हुए। अन्त में गुलामी की प्रथा मिटकर रही। इसी प्रकार राजाओं की संस्था की बात है। जगत् भर हजारों वर्षों तक व्यक्तियों का, बादशाहों का, राज्य चला। हमारे भारत में तो 'नाविष्णुः पृथिवी-पतिः' तक मान्यता रही। पर अन्त में 'क्या किसी एक व्यक्ति को करोड़ों आदमियों को अपनी हुकूमत में रखने का अधिकार है' यह प्रश्न खड़ा हुआ। उसे हल करने के लिए अनेक घनघोर युद्ध हुए और सदियों तक कहीं-न-कहीं झगड़ा चलता रहा। असंख्य लोगों को यातनाएँ

सहन करनी पड़ीं। अंत में राज्य-प्रथा मिटकर रही और राजसत्ता प्रजा के हाथ में आई। अब भी यद्यपि कहीं-कहीं जनतंत्र के नाम पर कुछ व्यक्ति अपनी अनियंत्रित सत्ता चलाने की कोशिश करते रहते हैं, परंतु वह बात सबको खटकती है और निःसंशय मान लेना चाहिए कि अन्त में वह टिकनेवाली नहीं है। हमारे यहाँ की अस्पृश्यता की बात भी इसी तरह की रही। हम उसे धार्मिक भी मानते रहे। अब कानून से ही वह दंडनीय है। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं कि समय-समय पर विचारों में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए और हजारों वर्षों तक चलती हुई मान्यताएँ छोड़ देनी पड़ीं। ऐसी ही कुछ बात संपत्ति के मालिकी हक के बारे में है।

सम्पत्ति कैसे बनती है ?

यहाँ थोड़ा इसका विचार कर लें कि संपत्ति बनती कैसे है ? यह खयाल गलत है कि रुपया, नोट या सोना-चाँदी का सिक्का संपत्ति है। ये तो संपत्ति के माप-तौल के साधन-मात्र हैं। संपत्ति वही चीजें हैं जो किसी-न-किसी रूप में मनुष्य के उपयोग में आ सकती हैं। उनमें से कुछ ऐसी हैं, जिनके बिना मनुष्य जिन्दा नहीं रह सकता और कुछ सुख-सुविधा और आराम के लिए होती हैं। अन्न, वस्त्र और मकान मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं, जिनके बिना उसकी गुजर-बसर नहीं हो सकती। इनके अलावा दूसरी अनेक चीजें हैं, जिनके बिना मनुष्य निभा सकता है। संपत्तिरूपी ये सब चीजें बनती कैसे हैं ? वे अपने आप तो बनती नहीं, न आकाश से टपकती हैं। कोई जन्म के साथ लाता भी नहीं, बल्कि जन्म के साथ तो कुछ आवश्यकताएँ ही उत्पन्न होती हैं, जिनको पूरी करने के लिए निरन्तर दौड़-धूप चलती रहती है। सृष्टि में जो नानाविध द्रव्य हैं, उनको लेकर मनुष्य शरीर-श्रम करता है, तब

यह काम की चीजें बनती हैं । अतः संपत्ति के मुख्य साधन दो हैं : सृष्टि के द्रव्य और मनुष्य का शरीर-श्रम । यंत्र से कुछ चीजें बनती दीखती हैं, पर वे यंत्र भी शरीर-श्रम से बनते हैं और उनको चलाने में भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शरीरश्रम की आवश्यकता होती है । केवल बौद्धिक श्रम से कोई उपयोग की चीज नहीं बन सकती, अर्थात् बिना शरीर-श्रम के संपत्ति का निर्माण नहीं हो सकता । पर आखिर संपत्ति की मालिकी में शरीर-श्रम करनेवालों का स्थान क्या है ? जो प्रत्यक्ष शरीर-श्रम के काम करते हैं, उन्हें तो गरीबी में या कष्ट में ही अपना जीवन बिताना पड़ता है और उन्हीं के द्वारा उत्पादित संपत्ति दूसरे थोड़े से हाथों में ही इकट्ठी होती रहती है । श्रमजीवियों की बनाई हुई चीजें व्यापारियों या दूसरों के हाथों में जाकर उनके लेन-देन से कुछ लोग मालदार बन जाते हैं । वर्ष भर मेहनत कर किसान अन्न पैदा करता है । बहुत दफा तो उसकी खुद की आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं होतीं, पर वही अनाज व्यापारियों के पास जाकर उनको धनवान् बनाता है । जिन मजदूरों की मेहनत के बिना कारखाना चलना ही असंभव है, उनको तो विशेष प्राप्ति होने की आशा नहीं । अगर मजदूर योग्यता प्राप्त कर लें तो धनिकों और व्यवस्थापकों के बिना भी कारखाना चल सकता है । अकेले व्यवस्थापक और धनिक स्वयं उन्हें कदापि नहीं चला सकते, फिर भी उन धनिकों और व्यवस्थापकों को मजदूरों की अपेक्षा कितना ही गुना अधिक पैसा मिलता है । संपत्ति बनाते हैं मजदूर और धन इकट्ठा होता है उनके पास, जो मजदूरी नहीं करते । उल्टे वे मजदूरी और मजदूर को नफरत की दृष्टि से देखते हैं । इस प्रकार संपत्ति चंद लोगों के पास इकट्ठी होती है । इन लोगों की संख्या सौ में शायद १० ही हो, जब कि शरीर-श्रम करनेवालों की संख्या करीब ९० है । इन धनिकों की संपत्ति का मूल देखा जाए तो वह श्रमिक के श्रम में या गरीब के

खीसे में ही मिलेगा। धनिकों के पास जो पैसा है, वह श्रमिक या गरीब की जेब से ही निकला हुआ पाया जायगा। गरीबों को उनके श्रम का पूरा फल नहीं मिलता अर्थात् गरीब के अधिक गरीब बनने पर धनिकों की संपत्ति बढ़ती है। उस संपत्ति पर उनका मालिकी हक माना जाता है। कानून या सामाजिक मान्यता कुछ भी हो, पर क्या यह स्थिति न्यायोचित है ?

श्रमजीवी और बुद्धिजीवी में श्रेष्ठ कौन ?

यहाँ हम इस प्रश्न का विचार कर लें। जीवन-निर्वाह या धन कमाने के लिए अनेक धंधे चल रहे हैं। इनके मोटे तौर पर दो वर्ग किये जा सकते हैं : कुछ धंधे ऐसे हैं जिनमें शरीर-श्रम आवश्यक है और कुछ ऐसे हैं जो बुद्धि के बल पर चलाये जाते हैं। पहले प्रकार के धंधों को हम श्रमजीवियों के धंधे कहें और दूसरों को बुद्धिजीवियों के। राजकाज चलानेवाले मंत्री आदि तथा राज के कर्मचारी ऊँचे-से-ऊँचे पद से लेकर नीचे के क्लार्क तक, न्यायाधीश, वकील, डाक्टर, अध्यापक, व्यापारी आदि धंधेवाले ऐसे हैं, जो अपना भरण-पोषण केवल बौद्धिक काम से करते हैं। दूसरे वर्ग में वे आते हैं जो शरीर-श्रम से अपना निर्वाह करते हैं, जैसे कि किसान और मजदूर, बढ़ई, राज, लोहार, चमार, भंगी आदि। समाज के व्यवहार के लिए इन बुद्धिजीवियों और श्रम-जीवियों, दोनों प्रकार के लोगों के धंधों की जरूरत है। पर सामाजिक दृष्टि से उन धंधों के मूल्यों में बहुत फर्क है। यह भी बहस की जाती है कि जैसे कुछ लोगों को शरीर-श्रम करना पड़ता है, वैसे दूसरों को बौद्धिक श्रम करना पड़ता है, बौद्धिक श्रम का महत्त्व शरीर-श्रम के जितना ही या उससे अधिक है। पर हम गहराई से सोचेंगे तो पता चलेगा कि समाज-धारणा की दृष्टि से स्थिति कुछ और ही है। कल्पना करें कि

अगर श्रमजीवी लोग अपने-अपने धंधे एकाएक छोड़ दें तो परिणाम क्या होगा ? मनुष्य-जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की चीजें भी नहीं बन सकेंगी, समाज जिन्दा नहीं रह सकेगा। दूसरी ओर अगर बुद्धि-जीवी लोग अपने धंधे छोड़ दें तो समाज में कुछ अव्यवस्था जरूर होगी, पर समाज मरेगा नहीं। बुद्धिजीवियों का जीवन भी श्रमजीवियों के धंधों पर अवलम्बित है। इससे कल्पना की जा सकती है कि समाज के अस्तित्व के लिए श्रमजीवियों का कितना महत्त्व है। ऐसा होते हुए भी दैवदुर्विलास यह है कि श्रमजीवियों की मजदूरी या आमदनी कम है, समाज में उनकी प्रतिष्ठा नहीं और उनको अपना जीवन प्रायः कष्ट में ही बिताना पड़ता है। बालकों की शिक्षा, बीमारी में दवा-पानी, मनो-रंजन आदि बातें तो उनके लिए दूर की ही हैं। इसके विपरीत बुद्धि-जीवियों का वेतन या मुनाफा ज्यादा है और समाज से उन्हें बढ़ी-चढ़ी प्रतिष्ठा तथा ऐश-आराम भी उपलब्ध हैं। इस व्यवस्था में आज समाज को कोई दोष नहीं दीखता। कानून भी इस स्थिति का समर्थन करता है। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि क्या यह न्यायोचित है ?

अब हम मूल प्रश्न पर आ जायें।

क्या बुद्धिजीवी को अधिक धन कमाने का हक है ?

धन-संचय के और अधिक धन कमाने के पक्ष में भी कुछ बातें कही जाती हैं। उनका भी विचार करना चाहिए। देश और विदेश के उच्चतम विद्यालयों में लंबी अवधि तक शिक्षा पाकर कोई विशेषज्ञ, जैसे कि डाक्टर, अपना धंधा करने लगता है; वह सफलता से चलता है; सफलता से चलाने लायक योग्यता भी उसमें है। वह मानता है और समाज भी मानता है कि उसे अपनी योग्यता द्वारा अधिक-से-अधिक धन कमाने का अधिकार है। वह अपनी मनमानी फीस मुकर्रर करता

हैं। अगर कोई उसे कम फीस लेने को कहे तो वह जतलाता है कि उसने वर्षों तक कठोर परिश्रम कर और खर्च सहन कर योग्यता प्राप्त की है, तो उसे उतने ही परिमाण में मुआवजा मिलना चाहिए। बीमार गरीब हो तो कभी-कभी उसे थोड़ी राहत भले ही मिल जाए, परंतु राहत का वह हकदार नहीं माना जाता। इसी प्रकार जो भाई कानून, इंजीनियरिंग आदि विद्याओं में निष्णात होते हैं, उनका भी यही हाल है। नामी लेखक, कवि, चित्रकार आदि कलाविदों की भी यही कथा है। ऐसा ही हक व्यापारी, उद्योगपति, व्यवस्थापक आदि जताते हैं।

व्यापारी और उद्योगपतियों के लिए अर्थ-शास्त्र ने यह नियम बताया है कि खरीदी सस्ती-से-सस्ती हो और बिक्री महँगी-से-महँगी। मुनाफे की कोई मर्यादा नहीं। जो कारखाना मजदूरों के शरीर-श्रम के बिना चल ही नहीं सकता, उसके मजदूर को सौ-पचास रुपये मासिक से अधिक भले ही न मिलें, पर व्यवस्थापकों और पूंजी लगानेवालों को हजारों-लाखों का मिलना आक्षेपार्ह नहीं माना जाता। प्रचलित विचार-धारा यह है कि बुद्धिमानों को अमर्यादित धन कमाने का और अपने पास संपत्ति इकट्ठी करने का हक है; क्योंकि उन्होंने उतना धन कमाने की शक्ति और कला प्रयास द्वारा प्राप्त कर ली है। जिन्हें वैसी शक्ति या कला प्राप्त नहीं है, उन्हें अधिक नहीं मिलता या भूखों भी रहना पड़ता है तो दूसरे को दोष क्यों दिया जाय? पर इस बात पर हमारा ध्यान नहीं जाता कि उन गरीबों में भी बुद्धि है और उन्हें मौका मिलता तो वे भी बुद्धिजीवियों जैसी ही शक्ति प्राप्त कर सकते थे। इस बात को हम छोड़ें। यहाँ तो इसका परीक्षण करना है कि इन शक्तिशालियों का असीम धन कमाने का अधिकार माना जाय या नहीं? कल्पना कीजिये कि किसी बालक को हम उसके बिल्कुल छुटपन में ही कहीं एकांत में छोड़ दें, उसका जनता से संपर्क न आने दें, उसके रक्षण और पोषण की

व्यवस्था कर दें और उसे वैसे ही बढ़ने दें, तो परिणाम क्या होगा ? वह बोली भी नहीं सीख सकेगा, अपने दिल की बात दूसरे को नहीं समझा सकेगा और दूसरे की बात खुद नहीं समझ सकेगा, व्यवहार बिल्कुल नहीं चला सकेगा। मनुष्य-समाज में रहने से अर्थात् समाज की कृपा से ही मनुष्य व्यवहार चलाने लायक बनता है। बालक प्राथमिक शाला से लेकर देश-विदेश के ऊँचे-से-ऊँचे महाविद्यालयों में सीखकर जो योग्यता प्राप्त करता है, वे शिक्षालय उसके निज के नहीं होते हैं। वे या तो सरकार द्वारा चलाये जाते हैं, जिनका खर्च आम जनता से टैक्स के रूप में वसूल किये हुए पैसे से चलता है या दानी लोगों की कृपा से। जो कुछ पढ़ने की फीस दी जाती है, वह तो खर्च के हिसाब से नगण्य है। विद्या पढ़ने के लिए जो पैसा खर्च किया जाता है, वह भी उसे या उसके घरवालों को ऊपर बताये मुताबिक समाज से ही मिला है। उसको समाज का अधिक कृतज्ञ रहना चाहिए कि उस पैसे के बल पर वह विद्या पढ़कर योग्यता प्राप्त कर सका। इस सारी शिक्षा में जो कुछ ज्ञान मिलता है, वह भी हजारों वर्षों तक अनेक तपस्वियों ने मेहनत करके जो कण-कण संग्रहीत कर रक्खा है, उसी के बल पर मिलता है। व्यापारी और उद्योगपति अपनी कला विद्यालयों से और अपने साथियों से प्राप्त करता है। व्यक्ति खुद अपनी बुद्धि का कुछ उपयोग तथा अध्ययन जरूर करता है, पर योग्यता प्राप्त करने में उसका खुद का हिस्सा इतना कम है कि अगर ऊपर लिखे अनुसार समाज की मदद न मिले तो वह कुछ विशेष करने लायक बनेगा ही नहीं। इस दशा में, जब कि अपनी योग्यता प्राप्त करने में हमारा खुद का हिस्सा अल्पतम है और समाज की कृपा का अंश अत्यधिक है, तो हमें जो योग्यता प्राप्त हुई है, उसका उपयोग समाज को अधिक-से-अधिक देना और उसके बदले में समाज से कम-से-कम लेना यही न्याय्य तथा हमारा कर्तव्य माना जा सकता

है। पर चल रहा है कुछ उलटा ही। व्यक्ति, समाज को कम-से-कम देने की इच्छा रखता है, समाज से अधिक-से-अधिक लेने का प्रयत्न करता है, कुछ भी न देना पड़े तो उसे रंज नहीं होता। आखिर व्यक्ति की यह धन कमाने की शक्ति भी प्रचलित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर ही अवलंबित है, न कि केवल उसकी इच्छा पर। अगर आर्थिक समानता का जमाना आए, जो कि कभी-न-कभी आने ही वाला है, तो हम आज धन कमाने की जिस शक्ति का अभिमान रखते हैं, वह पैसे के रूप में क्या फल दे सकेगी ?

क्या आजीविका के लिए भी बुद्धि का उपयोग उचित है ?

यह एक गंभीर और बुनियादी सवाल है कि क्या बुद्धि का उपयोग पैसे के लिए करना उचित है ? यह तो साफ दीखता है कि आर्थिक विषमता का एक मुख्य कारण बुद्धि का ऐसा उपयोग ही है। शोषण भी प्रायः उसीसे होता है। समाज में जो आर्थिक और सामाजिक विषमताएँ चल रही हैं और शोषण होकर अशांति होती है उसे मिटा े के लिए जगत् में अनेक योजनाएँ अब तक सामने आईं और इनमें से कुछ पर अमल भी हो रहा है। पर अहिंसा के द्वारा यह जटिल प्रश्न हल करना हो तो गांधीजी ने इस आशय का सूत्र बताया कि पेट भरने के लिए हाथ-पैर, और बुद्धि ज्ञान प्राप्त करने और ज्ञान देने के लिए; ऐसी व्यवस्था हो कि हर एक को चार घंटे शरीर-श्रम करना पड़े और चार घंटे बौद्धिक काम करने का मौका मिले; और चार घंटों के शरीर-श्रम से इतना मिल जाय कि उसका निर्वाह चल सके।

अभी समाज में यह चल रहा है कि बहुत से लोग अपनी आजीविका शरीर-श्रम से चलाते हैं और थोड़े बौद्धिक श्रम से। जिनके पास संपत्ति अधिक है वे आराम में रहते हैं। अनेकों में श्रम करने की

आदत भी नहीं है। इस दशा में उक्त सूत्र का अमल होना दूर की वात है। फिर भी उसके पीछे जो तथ्य है, वह हमें स्वीकार करना चाहिए, भले ही हमारी दुर्बलता के कारण हम उसे ठीक तरह से न निभा सकें; क्योंकि आजीविका की साधन-सामग्री किसी-न-किसी के श्रम विना बन ही नहीं सकती। इसलिए विना शरीर-श्रम किये उस सामग्री का उपयोग करने का न्यायोचित अधिकार हमें नहीं मिलता। अगर पैसे के वल पर हम सामग्री खरीदते हैं, तो उस पैसे की जड़ भी अंत में श्रम ही है। इसके अलावा हम यह भी देख रहे हैं कि जव बुद्धि का उपयोग समाजहित को छोड़कर अपने स्वार्थ के लिए किया जाता है, चाहे वह स्वार्थ व्यक्ति का हो, जाति का हो, समूह का हो या देश का हो, उससे दूसरों को हानि ही पहुँचती है। ऐटम बम भी ऐसे ही कुछ बुद्धि के उपयोग से वना है।

कई भाइयों का कहना है कि जैसे शरीर-श्रम का मूल्य माना जाता है, वैसे बौद्धिक श्रम का भी मानना चाहिए। उसमें भी श्रम तो करना ही पड़ता है, भले ही हाथ-पैर न हिलाना पड़े; बौद्धिक काम करनेवालों को इतना समय भी मिलना संभव नहीं है कि वे उसके साथ-साथ शरीर-श्रम करके अपनी आजीविका चला सकें; शरीर-श्रम करने में भी बुद्धि का उपयोग करने से अधिक सफलता मिलती है; कुछ काम ऐसे ही हैं, जो विद्वान् लोगों द्वारा चलाये विना चलेंगे भी नहीं। अलवत्ता जव तक आज की परिस्थिति चलती रहेगी और उसमें आमूल परिवर्तन नहीं होगा, तव तक इन दलीलों को महत्त्व देना होगा। परंतु हम यहाँ विचार बुनियादी सिद्धांत का कर रहे हैं। व्यावहारिक दृष्टि से उसमें ढिलाई भी सहन करनी पड़ेगी। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि बुद्धिजीवियों और श्रमजीवियों की आमदनी में उतना फर्क क्यों हो जितना आज है? अगर यह कहा जाय कि बुद्धिजीवियों की

आदतें, रहन-सहन ऐसी हैं कि अधिक आमदनी के बिना उनका निभ ही नहीं सकता, तो ऐसी आदतें क्यों बनीं ? उन्हें अब भी सुधारना संभव है या नहीं ? सुधारने का हम जी-जान से प्रयत्न क्यों न करें ? जब तक यह कमजोरी है, तब तक उन्हें कुछ अधिक सुविधा भले ही मिले जैसे कि परिवार में भी कुछ कमजोरों को दी जाती है, तथापि आज की विषमता का समर्थन कैसे हो सकता है ?

धनिक ट्रस्टी बनें

कुछ भाई यह भी कहते हैं कि "हम अपनी संपत्ति का बहुत थोड़ा-सा अंश ही निजी काम में लगाते हैं, अधिकतर अंश का उपयोग बड़े-बड़े उद्योग-धंधे, जो पूँजी के बल पर ही चल सकते हैं और जिनसे समाज के काम की चीजें बनती हैं उनके चलाने में ही किया जाता है। हमारे प्रयत्न के फलस्वरूप कई लोगों को काम मिलता है और उनकी आजीविका चलती है। एक प्रकार से हम यह समाज की सेवा ही करते हैं। अगर व्यक्तियों के पास विपुल संपत्ति इकट्ठी न हो तो यह कैसे हो सकेगा ? समाज के बहुत से व्यवहार रुक जायँगे।" गरीबों की आजीविका चलाने की जो बात कही जाती है, उसका उत्तर तो इतना ही काफी है कि जब उन गरीबों के बिना श्रीमानों के कारखाने या कामकाज चल ही नहीं सकते, तो यही मानना ठीक लगता है कि गरीब श्रमिक ही उन पर उपकार करते हैं, जिनकी सहायता से उन्हें मुनाफा होता है। अन्य कथन में तथ्य तब होता जब कि राजसत्ता या सहकार-समितियों द्वारा ऐसे काम होना संभव नहीं होते। उसकी तफसील में यहाँ न जावें। यहाँ तो धनिकों की दृष्टि से ही विचार करना है। जो धनिक भाई यह कहते हैं कि उनके अधिकतर प्रयास का फल समाज की सुविधा है, उनके लिए सीधा प्रश्न यह है कि यह आपका प्रयास स्वार्थ के लिए है या समाज-

हित के लिए ? सही उत्तर तो यही होना चाहिए कि हेतु तो स्वार्थ का ही है, फिर दूसरों को कुछ लाभ मिल जाता है, तो उन दूसरों के भाग्य की बात। अगर यह उत्तर आवे कि हमारा हेतु देश-हित है तो उनका स्वागत ही है। फिर हमारा कहना इतना ही रहेगा कि वे अपने सारे काम में असलियत लावें। महात्माजी भी तो यही कहते थे न कि धनिक लोग अपनी ज्यादा संपत्ति का उपयोग समाज के हित में ट्रस्टी के तौर पर करें ? संपत्तिदान-यज्ञ और भूदान-यज्ञ का भी आखिर आशय क्या है ? अपने पास आवश्यकता से जो कुछ अधिक है, उस पर अपना अधिकार न समझकर उसका उपयोग दूसरों के लिए करें।

दान में सदोषता

यह भी बहस चलती है कि धनिकों के दान से सामाजिक उपयोग के अनेक बड़े-बड़े कार्य होते हैं जैसे कि अस्पताल, विद्यालय आदि। अगर व्यक्तियों के पास संपत्ति इकट्ठी न हो तो समाज को यह लाभ कैसे मिलेंगे ? वास्तव में ऐसे काम करने के लिए राजसत्ता पड़ी है। जब संपत्ति थोड़े से हाथों में बँधी न रहकर समाज में फैली रहेगी, तो सहकार-पद्धति से बड़े पैमाने पर ऐसे काम आसानी से चलने लगेंगे और उनका लाभ लेनेवाले, याचक या दीन की तरह नहीं, पर सम्मानपूर्वक लाभ उठावेंगे। फिर भी धनिकों की दृष्टि से भी विचार किया जाय तो करोड़ों की संपत्ति इकट्ठी कर उसमें से कुछ लाख दान में खर्च कर देने मात्र से दूसरों के हिस्से की चीज अपने पास बटोरने के दोष से वे मुक्त नहीं हो सकते। उचित या अनुचित रीति से बहुत-सा धन कमाकर उसका कुछ थोड़ा-सा हिस्सा दान कर देना पूरा प्रायश्चित्त नहीं है। और जब हम चारों ओर धनिकों की दान की रीति देखते हैं तो उसमें शुद्ध दान कहाँ तक है, इसका पता चलाना कठिन होता है। जहाँ देखो वहाँ प्रायः ख्याति या स्वार्थ

की दृष्टि ही अधिकतर देखने में आती है। कभी-कभी दान का सौदा व्यापार के सौदे से भी अधिक कठोर होता है। एक लाख का दान करके दस लाख की कीर्ति कमाने की इच्छा रहती है। शुद्ध सात्विक दान तो विरले ही होता है।

प्रारब्धवाद

अन्य देशों में और अन्य धर्मों में जो नहीं है, वह एक विशेष बात भारत में चली आ रही है। वह है प्रारब्धवाद। यह माना जाता है कि पूर्व जन्मों में जो पुण्य किया है, उसके फलस्वरूप इस जन्म में संपत्ति और आराम मिलता है। जिन्होंने पाप किया है उनको गरीबी और कष्ट भोगना पड़ता है। इस दशा में कोई किसी को दोष क्यों दे? ऐसी बहस तो चलती रहती है, पर उसमें क्या हमारी पूरी श्रद्धा है? सच्ची श्रद्धा हो तो खेद का कारण नहीं दीखता; क्योंकि पूर्व जन्म का इस जन्म से संबंध आता है तो इस जन्म का सम्बन्ध आगामी जन्म से निस्संदेह आना ही चाहिए। इस जन्म में भाग्य से जो कुछ मिला तो मिला और न मिला तो न मिला, पर आगामी जन्म का प्रबन्ध करना तो हमारे हाथ में है। आगामी जन्म में सुख-आराम मिलाना हो तो इस जन्म में हमें पुण्य-ही-पुण्य करना चाहिए। अगर यह बात व्यापक रूप से बन जाय तो फिर और अधिक क्या चाहिए? समाज में सुख-शांति दृढ़मूल होगी। परंतु भाग्य के भरोसे कोई बैठा दीखता नहीं। हर एक जी-जान से खपकर सांसारिक झंझटें बढ़ा रहा है। बहुतेरे संपत्ति जोड़ने में पाप-पुण्य का ख्याल रखना भूल गए हैं। व्यापक पैमाने पर भ्रष्टाचार बढ़ने की शिकायत रात-दिन हो रही है, वह किस बात की द्योतक है? यह मानना भी गलत होगा कि यह भ्रष्टाचार या पाप गरीब ही करते हैं, धनिक नहीं करते। वास्तव में धनिकों का पाप कम नहीं है। जब

धनिक लोग भी धन कमाने में पाप करने से डरते नहीं, तब हम उनका यह प्रारब्धवाद सचमुच में दिल से है यह कैसे मानें ? अगर यह प्रारब्धवाद चलाना ही है तो गरीब लोग भी यह कह सकते हैं कि अब हमारे भी भाग्य ने पल्टा खाया है और हमारा प्रारब्ध हमें सुझा रहा है कि श्रीमानों की संपत्ति लूटकर अपना भाग्य सुधारने में बाधा नहीं है । इस प्रकार प्रारब्धवाद दुधारी तलवार बन सकती है, और चूँकि धनिकों की अपेक्षा गरीबों की संख्या बहुत अधिक है, इसलिए धनिकों के लिए वह खतरनाक है । गरीबों को उनके भाग्य के भरोसे छोड़ना भयानक है, लंबे समय तक उनकी अवहेलना हुई है । अब लक्ष्मीनारायण की जगह दरिद्रनारायण की उपासना होनी चाहिए ।

स्वार्थ का स्थान ?

अर्थशास्त्री कहते हैं कि व्यक्ति के स्वार्थ के लिए अवसर रखे बिना देश में उत्पादन और संपत्ति नहीं बढ़ सकेगी, किफायत भी नहीं होगी । माना कि मनुष्य में स्वार्थ-वृत्ति स्वाभाविक है । फिर भी अगर धनिक लोग खुद स्वार्थ की बहस करते हैं तो उनके लिए इतना ही उत्तर काफी है कि अगर समाज के और व्यक्ति के स्वार्थ में विरोध हो तो व्यक्ति के स्वार्थ को महत्त्व नहीं दिया जा सकता । अर्थशास्त्रियों की बहस में विपुल पूंजी का संग्रह अनिवार्य मान लिया गया है, पर सर्वोदय समाज में पूंजी की अपेक्षा मनुष्य का स्थान सर्वोपरि है । विकेन्द्रित उत्पादन और क्षेत्र-स्वावलंबन में मनुष्य-बल और शरीर-श्रम का ही महत्त्व है । थोड़ी-सी पूंजी काफी है । अगर कुछ चीजों के लिए बड़े कारखाने चलाने की जरूरत हो, तो वे सरकार की ओर से चल सकते हैं । देश में आज सरकार की ओर से उद्योग-धंधे चलाने लायक स्थिति न दिखे, तो भी वैसी स्थिति लाये बिना देश का कल्याण नहीं है । अब तक का अनुभव

बताता है कि पूंजी गरीबी या बेकारी की समस्या हल नहीं कर सकी है। नैतिक दृष्टि से भी स्वार्थ-वृत्ति का पोषण करना योग्य नहीं है। बहुत करके स्वार्थ का अर्थ होता है परार्थ की हानि। उसी में से स्पर्धा बढ़ती है, जिसके फलस्वरूप कुछ थोड़े-से ही लाभ उठा सकते हैं, बहुसंख्यकों को तो हानि ही पहुँचती है। मानवोचित सहयोग की जगह जंगल का कानून या मत्स्य-न्याय चलता है। आखिर यह देखना है कि समाज का कल्याण किस वृत्ति से होगा। अगर समाज में स्वार्थ-वृत्ति के लोग अधिक हों तो क्या कल्याण की आशा रखी जा सकती है? समाज ऊँचा तो परोपकार-वृत्ति के बल पर ही उठ सकता है। संपत्ति बढ़ाने के लिए स्वार्थ का आधार दोषास्पद है।

दाता को दीन बनना पड़े तो ?

अर्थ-नीति के बारे में कुछ भाई अमेरिका का उदाहरण पेश करते हैं। भारत को कल्याणकारी (वेल्फेयर) राज बनाने की बात चल रही है। कल्याण-राज का अर्थ यह समझा जाता है कि सब तरह के दुर्बलों को राज्यसत्ता द्वारा मदद मिले अर्थात् बड़े पैमाने पर कर वसूल करके उससे गरीबों को सहारा दिया जाय। भारत जैसे दरिद्र देश में क्या इस बात का बन आना संभव है? इसके अलावा स्वास्थ्य और शिक्षा के बारे में राज की प्रणाली कल्याणकारी हो, यह बात तो कुछ समझ में आ सकती है, परन्तु आर्थिक बातों में अर्थात् पेट भरने के विषय में मनुष्य, राज के भरोसे रहे, यह बात कहाँ तक ठीक है? प्राथमिक आवश्यकताओं के बारे में मनुष्य अपने पैर पर खड़े रहने के लायक हुए बिना स्वतंत्र नहीं रह सकता, किसी-न-किसी प्रकार उसे पराधीन रहना होगा। अमेरिका जैसे देश का उदाहरण हमारे काम नहीं आ सकता। वहाँ सारे जगत से संपत्ति बटोरी जाकर इकट्ठी हुई है, गरीबों को भी

काफी आराम मिल जाता है। वह मिसाल आज की दशा में या जहाँ तक भविष्य देख सकते हैं वहाँ तक हमारे किस काम की ? हमारे यहाँ हर साल कहीं-न-कहीं करोड़ों लोगों को अकाल की-सी दशा में से गुजरना पड़ता है। अनाज के भंडार भरे रहते हुए भी कुछ प्रांतों म बड़ी तादाद में लोगों को भुखमरी सहन करनी पड़ती है। गरीबों के पास अनाज खरीदने के लिए पैसा नहीं रहता। काम करने का अवसर नहीं है, इसलिए पैसा नहीं मिलता। धनिकों के केन्द्रित उद्योगों के कारण बेकारों को ग्रामोद्योग मुहैया नहीं किये जा सकते। यह सही है कि अकाल की-सी दशा में कल्याण राज की तरह सरकार और दानी लोग उनको राहत पहुँचाने की कुछ व्यवस्था करते हैं। पर क्या वह पर्याप्त है ? उस दृश्य का चित्र आँख के सामने लाइये कि कुछ लोग भूखों के बीच कांजी वितरण कर रहे हैं और कुछ कांजी ले रहे हैं; कुछ दयालु कपड़ा बाँट रहे हैं और कुछ अधनंगे कपड़ा पा रहे हैं। ऐसे फोटो अखबारों में छपते भी हैं। पर क्या ये दृश्य मनुष्य के हृदय में व्यथा पहुँचानेवाले नहीं हैं ? एक व्यक्ति चीज बाँटने की दशा में रहे और दूसरा लेने की विपन्नावस्था में ! इसका ठीक मर्म तो तब ही समझ में आयगा जब बाँटनेवालों को कभी ऐसी चीजें माँगने के लिए दीनता से अपना हाथ पसारना पड़े। स्वराज्य मिल जाने के बाद भी यह कब तक चलता रहेगा ? हर एक को यथोचित खाना, कपड़ा और मकान मिल जाने के बाद अगर कुछ बचे तो धनिक लोग भले ही उसे अपने पास रखें। उसमें भी आपत्ति तो है ही। जब तक गरीबों की सँभाल ठीक-ठीक नहीं होती है तब तक धनिकों को बेचैन रहना चाहिए। महलों में रहनेवालों को सोचना चाहिए कि उनके महलों के सामने ही फुट-पाथ पर बेघर-बारवालों को रात-दिन अपना जीवन क्यों बिताना पड़ता है, मोटर में बैठकर जानेवालों को सोचना चाहिए कि उसी सड़क पर से

साठ-सत्तर बरस के स्त्री-पुरुषों को सिर पर लकड़ी की मोळी या घास का गट्ठर लेकर कोसों पैदल क्यों चलना पड़ता है ? ऐसी बातों का विचार करते रहने से अपने पास अधिक संपत्ति रखने का अधिकार है या नहीं, इस प्रश्न पर काफी रोशनी पड़ेगी।

देश को परिवार समझें

मानिये कि एक परिवार में पाँच व्यक्ति हैं, उनको पेट भरने के लिए चार सेर अनाज की जरूरत है। अगर पूरा चार सेर अन्न मिल जाता है तो सब पेट भर खायेंगे। अगर तीन ही सेर मिले तो क्या करेंगे ? क्या एक-दो को भूखा रखकर बाकी सब पेट भर खा लेंगे ? परिवार में ऐसा नहीं होता। अगर जरूरत से कम मिलता है तो सब ही थोड़ा-थोड़ा कम लेकर निभा लेते हैं। बालक और कमजोरों का ख्याल पहले किया जाता है। सामाजिक दृष्टि से यही न्याय समाज के सब व्यक्तियों पर लागू होना चाहिए। राज्यकर्ताओं की और समाज की दृष्टि में सारा देश एक परिवार है। अगर देश में संपत्ति पर्याप्त है तो सब पूरी भोगें। सम्पत्ति कम रहने की दशा में हर एक को कुछ-न-कुछ कष्ट सहने को, त्याग करने को तैयार रहना चाहिए। धर्म भी यही बात सिखाता है। हमारी जबान पर तत्त्वज्ञान के विचार समय-बेसमय आते रहते हैं। अपने-पराये का भेद गलत है, सब में आत्मा समान है, ईश्वर ने सब को पैदा किया है, हम सब भाई-बहन बराबर हैं, इत्यादि। इन सही विचारों से आचरण का सदा मेल बैठाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

शरीरश्रम से नफरत

शरीरश्रम के बारे में हमारी सामाजिक विचारधारा में एक बड़ा भारी दोष है जो शायद दूसरे देशों में नहीं मिलेगा। हम शरीरश्रम

करना नहीं चाहते। इतना ही नहीं, वरन् उसे नफरत की नजर से देखते हैं और जिनको शरीरश्रम करना पड़ता है, उन्हें समाज में हीन दर्जे का मानते हैं। श्रीमान् या गरीब, कोई भी श्रम करना नहीं चाहता। धनिक अपने पैसे के बल से नौकरों द्वारा अपना काम चला लेता है। गरीब भूख की लाचारी से श्रम करता है। हमें यह वृत्ति बदलनी चाहिए। शरीरश्रम की केवल प्रतिष्ठा स्थापित कर संतोष नहीं मानना है, उसके लिए हमारे दिल में प्रीति होनी चाहिए। धनिक और मध्यम वर्ग के लोगों को दूसरों के लिए शरीरश्रम का उदाहरण पेश करना चाहिए।

आर्थिक विषमता हटे बिना चारा नहीं

पहले बताया जा चुका है कि शरीरश्रम के विना संपत्ति नहीं बनती, अर्थात् धनिकों के पास जो संपत्ति इकट्ठी होती है, वह गरीबों के शरीर-श्रम का ही फल है। इसके अलावा गरीबों के सहयोग के विना धनिक लोग संपत्ति कमा नहीं सकते, अपने पास रख नहीं सकते और उसका उपयोग या उपभोग भी नहीं कर सकते। न्याय की दृष्टि से इस निर्णय पर पहुंचना पड़ता है कि आवश्यकता से अधिक संपत्ति रखने का और निज के लिए कमाने का किसी व्यक्ति को अधिकार नहीं है। यह प्रश्न उठ सकता है कि आवश्यकता कितनी मानी जाय ? मनुष्य-मनुष्य के नाते इसमें बहुत फर्क नहीं पड़ना चाहिए। बीमार और स्वस्थ, बालक और युवक और अपनी-अपनी विभिन्न आदतों के कारण भी कुछ फर्क जरूर पड़ सकता है और उसे मानना भी चाहिए। अगर न्याय की दृष्टि से देखें तो आवश्यकताओं के बारे में निर्णय करना मुश्किल नहीं है। परंतु समस्या तब जटिल होती है, जब अपना स्वार्थ, सांसारिक मोह, धन में आसक्ति, आदि दोष खेल खेलने लगते हैं। आवश्यकता के

प्रश्न पर यहाँ अधिक गहरे जाने की जरूरत नहीं है। हमारे लिए इतना काफी है कि अभी की सामाजिक और आर्थिक घोर विषमता न्यायोचित नहीं है। उसे बदलना चाहिए। यह जमाने की माँग टाली नहीं जा सकेगी। इस प्रकार की विषमता हर जगह चलती रही है, हजारों वर्षों तक चली। साधु-संतों ने, सब धर्मवालों ने सदा आदेश दिया है कि गरीबों का खयाल करो, अपने पास जो ज्यादा है उसे दूसरों को दो। दान, धर्म, खैरात की प्रणाली चल रही है, तथापि गरीबी का प्रश्न हल नहीं हुआ। ऐसे उपायों से हल होता दीखता भी नहीं। अब कुछ समय से जगत् के सामने दया की जगह समता का विचार आया है। पूरी सोलह आना समता आना संभव न हो, तथापि अभी की विषमता तो कदापि सहन न होनी चाहिए। यह विषमता कैसे दूर हो? कहीं-कहीं लोगों ने हिंसा का मार्ग ग्रहण किया। उसमें से अनेक बुराइयाँ निकलीं जो अब तक दूर नहीं हो सकी हैं। विषमता दूर करने में कानून भी कुछ मदद देता है। भारत में कुछ अंश में कानून का ऐसा चक्र चालू भी हो गया है। परंतु कानून से मानवोचित गुणों का, सद्भावना का विकास नहीं हो सकता। महात्माजी ने हमें जो अहिंसा की विचारधारा दी है, जिसका हमने कुछ अनुभव भी कर लिया है तथा भारत की परंपरा का खयाल करते हुए यह संभव दीखता है कि विषमता का प्रश्न बहुत कुछ हद तक अहिंसा के मार्ग से हल हो सकना संभव है। इसमें धनिकों से पूरा सहयोग मिलना चाहिए। उनके दिल में परिवर्तन होना चाहिए। इसका असर कानून बनाने की शक्ति पर भी पड़ेगा और हमारे सब कार्य-क्षेत्रों में, समाज़ में सद्गुणों का विकास होगा। जैसे राजनैतिक स्वराज्य का प्रश्न काफी हद तक अहिंसा के मार्ग से सुलझा, वैसे ही आर्थिक और सामाजिक समता का प्रश्न भी भारत में अहिंसा के मार्ग से सुलझेगा, ऐसी हम श्रद्धा रखें। विनोबाजी द्वारा चलाये हुए भूदान-

यज्ञ और संपत्ति-दान-यज्ञ में हम सब छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, तहेदिल से सहयोग दें।

गरीबों से भी दान क्यों ?

भूदान-यज्ञ में बड़े जमींदारों से विशेष अधिक मात्रा में जमीन मिलने की आशा रखी गई है, साथ ही थोड़ी जमीनवालों से भी कुछ-न-कुछ जमीन माँगी जा रही है। अनुभव यह रहा कि तुलनात्मक दृष्टि स थोड़ी जमीनवालों की उदारता विशेष रूप से प्रकट हुई। भूदान की तरह संपत्ति-दान में भी छोटे-बड़े सबसे अपेक्षा रखी गई है कि वे अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा दें। यह शंका की जाती है कि जिनके पास पाँच-दस एकड़ से ज्यादा जमीन नहीं है, उनसे भी क्यों माँगी जा रही है? वैसे ही जिनकी आमदनी इतनी कम है कि उनको गरीबी से भी गुजर करना मुश्किल है तथा यह चिंता रखनी पड़ती है कि किसी प्रकार थोड़ी-सी भी अधिक आमदनी हो, उनसे भी संपत्ति-दान में कुछ-न-कुछ प्राप्त करने कीअपेक्षा क्यों रक्खी जा रही है? एक तो दान देने में किसी पर जबरदस्ती नहीं है, वह स्वेच्छा पर अवलंबित है। देनेवाला अगर प्रसन्नता से देता है तो दान क्यों न लिया जाय? यज्ञ में हविर्भाग देने के लिए गरीब-अमीर सबको निमंत्रण इ। ऐसे विश्व-यज्ञों में सबका योग आवश्यक है। बहुत दफा जब गरीब लोग दान देने का सिलसिला शुरू कर देते हैं, तो फिर धनिक भी उसमें शामिल हो जाते हैं। वास्तव में इस विषय में तो धनिकों को नेतृत्व करना चाहिए। पर उनको जो जमीन या संपत्ति देनी पड़े, उसकी तादाद बड़ी होने के कारण और अधिक चीज में आसक्ति भी अधिक होती ह, इसलिए, धनिकों को अपने दिल को समझाकर निर्णय करने में कुछ देर लगती है। अतः गरीब हो या अमीर, सबको उत्साहपूर्वक

दान करने को तैयार रहना चाहिए। इन यज्ञों में हविर्भाग देने के लिए सबको निमंत्रण देने का यह भी एक कारण है कि अभी समाज में स्वार्थ-वृत्ति बढ़कर जो भ्रष्टाचार चल रहा है उस पर कुछ पाबंदी लगे। जो इन यज्ञों में हिस्सा लेगा, वह अपने दिल में शुद्धता-अशुद्धता का विवेक जरूर रखेगा। स्वार्थ-वृत्ति गरीब-अमीर सबमें है। जरूरत है कि सबका मानस सुधरे। स्वार्थ-वृत्ति घटे बिना समाज का उत्थान नहीं होगा। दान में सब लोग हिस्सा लेंगे, तो राष्ट्रीय जीवन शुद्ध होगा। छोटे-बड़े सबका एक-दूसरे पर असर पड़ता है। अवगुणों की तरह गुण भी मनुष्य दूसरों को देखकर सीखता है। सब आर्थिक समता तथा शरीर-श्रम और स्वावलंबन का महत्त्व समझें, हर व्यक्ति दूसरों के सुख-दुःख की चिंता रक्खे, एकता की भावना बढ़े, सबका स्वार्थ घटे इत्यादि गुणों के विकास के लिए आवश्यक है कि छोटे-बड़े सब इन यज्ञों में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार योग दें।

धन की लालसा कम हो

वास्तव में गरीबों को तो मदद ही पहुंचनी चाहिए। ये यज्ञ उनको मदद पहुँचाने के लिए ही हैं। फिर भी उनसे भी, किंचित् ही क्यों न हो, कुछ-न-कुछ माँगा जा रहा है। क्योंकि उनमें भी धन की लालसा का कम होना आवश्यक है। आज तो गरीबों को भी हमारी आर्थिक व्यवस्था का मूल दोष मालूम नहीं है। अगर उन्हें धनिक होने का मौका मिले तो वे उसका लाभ उठाना चाहेंगे। कोई धनिक हो या गरीब, या मध्यम वर्गीय, सबको धनिक बनने की लालसा सता रही है। जो धनिक नहीं हैं और धनिकों को दोष देते रहते हैं, वे भी धनिक बनने की लालसा तो रखते ही हैं। चारों ओर धन के लिए दौड़-धूप मची हुई है। कार-खानों में मालिक और मजदूरों के बीच सदा झगड़े होते रहते हैं।

गरीबों और मजदूरों की दशा सुधारना तथा उनकी आय बढ़ाना आवश्यक तो है ही, परन्तु उनका ध्यान अपना सुधार करने की अपेक्षा अधिक पसा कमाने की ओर ही अधिक है। देश में खुद की अपेक्षा दूसरे अधिक गरीव लोग भी हैं और उन कारखानों के कारण ही दूसरों में बेकारी बढ़ रही है, इस ओर उनका ध्यान नहीं है। मालिकों की तरह मजदूर भी कारखानों में अधिकाधिक मुनाफे का स्वागत करते हैं; क्योंकि उस मुनाफे में से उनको भी कुछ हिस्सा मिल जाता है। इस तरह कारखानों में चीजों का उपयोग करनेवाले गरीबों के हित की अपेक्षा मुनाफे की दृष्टि ही अधिक रहती है। समाज के सब वर्गों में पैसा कमाने की लालसा को लगाम लगाने की जरूरत है। इस तत्त्व को समझकर हर एक में त्याग-वृत्ति का विकास होना चाहिए। ये यज्ञ इसमें मदद करेंगे। समझ-बूझकर अंतःकरण में अगर ऐसा परिवर्तन होगा और चारों ओर ऐसी हवा फैलेगी, तो धनिक लोग भी उससे अछूते नहीं रह सकेंगे।

संपत्ति-दान-यज्ञ में गरीब योग क्यों दें ?

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारत बहुत गरीब देश है। यहाँ धनिक कहलाने योग्य तो लाखों में एक-आध ही मिलेगा। खा-पीकर सुखी तो शायद फी सदी दस ही हों। वाकी नब्बे प्रतिशत लोग गरीब हैं। ये गरीब लोग प्रायः उत्पादक श्रम करके जैसे-तैसे मुश्किल से अपना निर्वाह कर पाते हैं। उनको अपना जीवन काफी कष्ट में बिताना पड़ता है। अगर देश में गरीबी है, तो सबको गरीबी सहन करने को तैयार रहना चाहिए। यह न्याय की बात नहीं है कि एक ही देश में रहनेवाले चंद लोग तो ऐश-आराम और चैन में रहें और बहुत सारे गरीबी की यातना भोगते रहें। इसके अलावा, जब स्थिति यह है कि धनिकों की अमीरी गरीबों के शरीर-श्रम पर ही अवलंबित है, तो यह अन्याय असहनीय होना चाहिए।

यज्ञ में सबका हविर्भाग

ऐसे एक उद्देश्य को लेकर विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ तथा संपत्ति-दान-यज्ञ चलाये हैं। इस उद्देश्य की सफलता के लिए आवश्यक है कि इन यज्ञों को आंदोलन का स्वरूप प्राप्त हो और वे बड़े व्यापक पैमाने पर चलें। अगर फी सदी नब्बे गरीब लोग इन यज्ञों में शरीक नहीं होते हैं, तो विचार व्यापक नहीं हो सकता और समाज की विचार-धारा भी नहीं बदल सकती। इसलिए अमीर-गरीब, सबको इन यज्ञों में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार आहुति डालनी ही चाहिए।

सब कैसे शामिल होंगे ?

त्याग, यज्ञ का मुख्य अंग है। स्वार्थ-त्याग किये बिना देश ऊँचा नहीं उठ सकता। हम समाज-हित के लिए अमीरों को त्याग करने को कहें और नब्बे फी सदी गरीब लोग कुछ भी त्याग न करें, तो गरीबों को धनिकों से त्याग करने के लिए कहने का हक नहीं पहुँचता। खुद स्वार्थी बने रहकर दूसरों को त्याग करने के लिए कहने से कोई ठीक परिणाम नहीं निकल सकता। हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि देश में केवल धन-संपत्ति का हस्तांतर नहीं करना है। मनुष्य का स्वार्थ और लोभ छुड़ाना है। उसके अंतःकरण की शुद्धि करनी है, ताकि उसके पास जो कुछ साधन-सामग्री है, उसका वह सदुपयोग करता रहे, समाज को अपने हृदय में स्थान दे, दूसरों को सहयोग दे और उनको मदद करने की वृत्ति बढ़ावे। बहुसंख्य गरीब लोगों द्वारा इन आंदोलनों में भाग न लेने से ऐसी हवा निर्माण नहीं हो सकती कि जिससे परिस्थिति-वश सबको इनमें शामिल होना पड़े। इसलिए कार्यकर्ताओं का यह विशेष प्रयत्न होना चाहिए कि गरीब भी इन आंदोलनों में हाथ बँटावें।

समाज के आधार : श्रमिक

लेकिन जैसे विद्वान लोग अपनी विद्या का मूल्य पैसे में आँकते हैं, वैसे श्रमजीवी भी अपने श्रम का मूल्य पैसे-टके में ही आँक रहे हैं। परिणाम यह हुआ है कि पैसे के लिए सबकी घुड़-दौड़ हो रही है। श्रमिक भी कर्तव्यपरायण नहीं रहा है। श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाना उसीके हाथ है। जिस श्रम में समाज को जिंदा रखने की क्षमता है, उस श्रम का सही मूल्य अगर वह जान लेगा, तो देश में आर्थिक क्रांति होने में देर नहीं लगेगी। अगर गरीब लोग, जो प्रायः श्रमजीवी ही हैं, भूदान और संपत्ति-दान-यज्ञ का सिद्धांत समझकर दिल से उनमें हिस्सा लेंगे, तो उनका तेज प्रकट होगा और उनको समाज में, उनके योग्य महत्त्व का स्थान प्राप्त होगा। उन्हें अपनी शक्ति का भान तो हो, पर अगर उनमें कर्तव्य की जागृति न हो, तो वह कर्तव्य-विहीन शक्ति उनकी आसुरी संपत्ति होगी, जिससे समाज को आज भी हानि पहुँच रही है, भविष्य में भी पहुँचती रहेगी। यज्ञों में भाग लेने से उनकी त्यागवृत्ति बढ़ेगी और उन्हें कर्तव्य का भी ठीक-ठीक भान होगा।

गरीब दूसरे गरीब का खयाल करें

गरीबी-गरीबी में फर्क है। कुछ खाने तक को न मिलने के कारण मजबूर होकर दर-दर भटक रहे हैं। कुछ अधभूखे रहकर ही जिंदा रहते हैं और कुछ अपना काम तंगी से चलाते हैं अथवा किसी प्रकार निभा लेते हैं। जो इस प्रकार दुख भोग रहे हैं, उनको गरीबी के अनु-भव के कारण दूसरे गरीबों के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए। परंतु प्रायः हर एक दूसरे की कोई परवाह न कर अपने ही स्वार्थ में लगा है। अपने-अपने भिन्न-भिन्न कार्य-क्षेत्रों के कारण श्रमजीवियों के समाज में

अनेक तबके खड़े हो गये हैं। उनमें से कुछ का जहाँ कुछ संगठन हो गया है, जैसे कि बड़े कारखाने, रेल्वे, पोस्ट-ऑफिस आदि क्षेत्रों में, वहाँ वे हड़ताल आदि द्वारा समाज को अड़ाकर अपनी-अपनी आमदनी बढ़ाने की सदा कोशिश करते रहते हैं। करोड़ों देहात में बसनेवाले गरीब भूमिहीनों की ओर उनका ध्यान नहीं जाता, जो उनसे कितने ही अधिक गरीब हैं और कष्ट भोग रहे हैं। देश की संपत्ति तो मर्यादित है। अगर कुछ लोगों की ही आमदनी बढ़ती रहे, तो दूसरों की गरीबी बढ़ेगी। अमीर लोग भी अधिक धन बटोरते हैं, तो उसका भी परिणाम यही होता है। इसलिए जिनके पास जो कुछ है, थोड़ा या अधिक; उनका यह कर्तव्य है कि वे अपने से जो अधिक गरीब हैं, उनकी ओर ध्यान देवें और उनकी मदद करें। ऐसा हुए बिना समूचे समाज का हित नहीं सध सकता।

गरीब का दान अपनी मर्यादा में हो

ये यज्ञ गरीबों की भलाई के लिए हैं। लेकिन उनका कल्याण तभी हो सकता है, जब हर गरीब दूसरों की भलाई सोचे और खुद भी कुछ त्याग करे। चूँकि गरीबों के पास विशेष कुछ है नहीं, इसलिए उनके त्याग की मात्रा नाममात्र की ही हो सकती है। परंतु वह त्याग, दिल में समाज को स्थान देकर, समझ-बूझकर होने के कारण, विशेष फलदायक होगा। जो धनिक होने के कारण विशेष बोझ सहन कर सकते हैं, उनके त्याग की मात्रा विशेष रूप में होनी चाहिए, पर दूसरों के लिए तो अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार ही वह हो सकती है।

संपत्ति-दान में फिलहाल साधारण तौर पर आमदनी के या गृहस्थी-खर्च के छठे हिस्से की माँग की जा रही है। लेकिन यह कोई

टैक्स नहीं है। दाता अपनी शक्ति के अनुसार कम-बेशी हिस्से का संकल्प कर सकता है। हमारे अर्थशास्त्री अभी भारत में फी व्यक्ति पीछे मासिक बीस रुपये आमदनी आँकते हैं। यह आँकड़ा औसत का है। अर्थात् कुछ की आमदनी इससे भी बहुत कम है और कुछ की बहुत ज्यादा। परिवार की औसत-संख्या पाँच व्यक्ति मानकर, एक परिवार की आमदनी मासिक रुपये सौ गिन लें और संपत्ति-दान में प्रति रुपये पीछे आधा आने का संकल्प किया जाय, तो गरीब-परिवार को उस दान के लिए महीने भर में तीन रुपये दो आने ही खर्च करने होंगे। ऊपर लिखे मुताबिक यज्ञ के महत्त्व का ख्याल करते हुए क्या गरीब के लिए इतनी-सी रकम कोई बड़ा बोझ हो सकती है? हम देखते हैं कि आजकल गरीब लोग भी कुछ-न-कुछ फिजूल खर्च करते ही रहते हैं। होटल, चाय, तंवाकू, सिनेमा आदि में उनका कितना ही पैसा बरवाद होता रहता है। ऐसे खर्चों में से थोड़ी किफायत की जाय, तो वे संपत्तिदान के लिए थोड़ी-सी रकम आसानी से बचा सकते हैं और उनके व्यसन भी कुछ अंश में घट सकते हैं। समाज की विचार-धारा में परिवर्तन करने के खातिर उनको इतना-सा त्याग करने के लिए जरूर तैयार होना चाहिए। अगर उनको ठीक तरह समझाया जाय और उनको जँच जावे, तो यह काम आसान है। इतनी बड़ी तादाद-वाले गरीब लोग यज्ञ का सिद्धांत यदि अपना लेवें, तो फिर सारे समाज का धन-संपत्ति संबंधी विचार बदलने में शंका नहीं रह सकती। गरीब को चाहिए कि वह उत्साह और हर्ष के साथ इन यज्ञों में शरीक हों।

विद्यार्थी भी शरीक हों

हाईस्कूलों और कॉलेजों के विद्यार्थियों से भी अपेक्षा है कि वे संपत्तिदान-यज्ञ में योग दें। उनको इन यज्ञों का प्रचार-कार्य और

श्रमदान तो करना ही चाहिए, साथ-ही-साथ यज्ञ के निमित्त से समाज के लिए अपनी ओर से कुछ खर्च भी करते रहना चाहिए। शायद वे कहें कि हम कोई कमाई तो करते नहीं हैं, केवल खर्च ही खर्च करते हैं। फिर भी उनसे अपेक्षा है कि वे अपने विद्यार्थी-काल में भी कुछ-न-कुछ नियमित रूप से त्याग करने की आदत बना लें। अगर वे यह समझते हों कि समाज-सेवा का काम विद्या हासिल करने के बाद गृहस्थ-जीवन में शुरू हो, तो उनका यह समझना गलत होगा। अनुभव तो यह है कि जिन्होंने विद्यार्थी-जीवन में समाज-सेवा का काम किया है, आगे चलकर उनमें से ही कुछ समाज-सेवा का काम चालू रखते रहे हैं। शिक्षा-काल में विद्यार्थी जनों का उत्तम व ऊँचे दर्जे के विचारों से संपर्क आता है, वे उनसे प्रभावित भी होते हैं। भविष्य में समाज-सेवा करने के भाव भी उनके दिल में पैदा होते हैं। जिन भावनाओं की आचरण से दृढ़ता और पुष्टि नहीं होती, वे भाव आगे टिक नहीं पाते और प्रपंच में फँस जाने के बाद तो वे भाव प्रायः मिट भी जाते हैं। इसलिए विद्यार्थी-जीवन में ही आचरण से सद्‌गुणों का पोषण करना चाहिए। यह बात भविष्य पर छोड़ने लायक नहीं है।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि विद्यार्थी संपत्ति दान-यज्ञ में किस प्रकार योग दे सकते हैं। उन्हें कोई आमदनी तो है नहीं, फिर भी खर्च तो उन्हें करना ही पड़ता है। उसी खर्च के अनुपात में वे संपत्ति-दान का संकल्प कर सकते हैं। स्कूल-कॉलेजों के खर्च काफी बढ़ गये हैं, फिर भी जीवन में सादगी लायी जाय, तो काफी किफायत हो सकती है। इसलिए विद्यार्थी को अपने अध्ययन-काल में जो कुछ खर्च करना पड़ता है, उसका एक छोटा-सा हिस्सा, जैसे कि रुपये पर दो पैसे संपत्तिदान-यज्ञ में खर्च करने का संकल्प वे कर सकते हैं। अब भी कहीं-कहीं विद्यार्थी अकाल, बाढ़ आदि संकटों के समय कुछ-न-कुछ

सहायता, किसी-न-किसी रूप में देते हैं, दूसरे गरीब विद्यार्थियों की मदद भी करते हैं। पर यह काम कभी-कभी और नैमित्तिक रूप से होता है। हम चाहेंगे कि खर्च का एक हिस्सा नियमित रूप से और जीवन के एक अंग के रूप में संपत्तिदान-यज्ञ में खर्च करने का संकल्प हो, जो बाद में काम-धंधे में लगने पर आमदनी के यथोचित हिस्से में परिणत हो जाय।

यज्ञों का उद्देश्य : अहिंसक समाज

भूदान-यज्ञ के बाद संपत्तिदान-यज्ञ शुरू हुआ। श्रमदान-यज्ञ की आवाज भी गूँज रही है। बुद्धिदान-यज्ञ का भी नाम कभी-कभी सुनायी देता है। अब जीवनदान-यज्ञ भी चल पड़ा है। क्या ये सब चीजें भिन्न-भिन्न हैं ? जीवनदान-यज्ञ की बात कुछ अलग है, पर बाकी सब यज्ञ एक ही वस्तु के भिन्न-भिन्न पहलू हैं। उनमें से किसी एक से या सब मिलाकर भी कोई एक अंतिम वस्तु सिद्ध नहीं होती। वे साधन मात्र हैं। साध्य वस्तु क्या है ? भूतकाल में मानव-समाज में सुख-शांति स्थापित करने के लिए अनेक प्रयत्न हुए। उनसे समय-समय पर कुछ हद तक लाभ भी हुआ। तथापि संतोष होने लायक दशा प्राप्त नहीं हुई। इसके लिए अब भी प्रयत्न जारी है और भविष्य में भी जारी रहेगा। कई देशों में हिंसा के आधार पर नये समाज की रचना का प्रयत्न हुआ और हो रहा है। कुछ देशों ने कानून का सहारा उपयुक्त समझा। वास्तव में समाज कैसा हो, इसके कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट चित्र विचारकों के सामने हैं। कुछ लोग ऐसा समाज चाहते हैं कि जिसमें किसी का शोषण न हो और शासन कम-से-कम हो, उसमें व्यक्ति यथासंभव स्वतंत्र और स्वावलंबी रहकर अपना विकास कर सके और श्रमनिष्ठ हो। आर्थिक और सामाजिक विषमता हटे।

स्वार्थ की जगह परार्थ और स्पर्धा की जगह सहयोग चले एवं संयुक्त परिवार में जैसे एक-दूसरे का भाई-चारा चलता है, वैसा ही व्यवहार सारे समाज में चले। ऐसे समाज को हम सर्वोदयी या अहिंसक समाज कह सकते हैं या रामराज्य भी। पर प्रश्न यह है कि ऐसा समाज कैसे बन सकेगा ? क्या केवल भौतिक परिस्थिति बदलने से यह बात साध्य हो सकगी ? समाज व्यक्तियों का बनता है। अगर व्यक्ति अर्थात् मनुष्य न बदले, तो केवल भौतिक परिवर्तन से क्या शाश्वत सुख-शांति प्राप्त हो सकेगी ? जिसके हाथ में भौतिक चीजें रहेंगी, उसके खुद के सुधरे बिना उन चीजों का क्या समाज-हित में ठीक उपयोग हो सकेगा ? हिंसा और कानून से केवल भौतिक परिवर्तन हो सकता है, मनुष्य के हृदय का परिवर्तन और चीज है। अहिंसक समाज की रचना के लिए मनुष्य के हृदय में सही परिवर्तन होना आवश्यक है अर्थात् उसमें मानवता आनी चाहिए। भूदान आदि यज्ञ ऐसे समाज की रचना के और मनुष्य के हृदय-परिवर्तन के प्रयत्न में सही कदम हैं। और भी अनेक बातें करनी होंगी, पर इन यज्ञों के बिना नव-समाज-रचना का उद्देश्य सफल होना मुश्किल है।

क्या यह संभव है ?

प्रश्न पूछा जाता है और वह स्वाभाविक है कि क्या ऐसे समाज का हो सकना कभी संभव है ? हजारों वर्षों में अनेक साधु-संतों ने प्रयास किया, सब धर्मवालों ने भी प्रयत्न किया, परंतु सफलता नहीं मिली। क्या कभी बहुजन समाज इतना सुधर जायगा कि सब अपना-अपना व्यवहार भाईचारे की दृष्टि से करते रहेंगे ? क्या समझाने मात्र से इतना शुभ-परिवर्तन हो सकेगा ? क्या संपत्तिदान-यज्ञ में बहुत बड़ी तादाद में लोग ईमानदारी से साथ देंगे ? रचनात्मक कार्यकर्ताओं के

दिल में भी ऐसी ही शंकाओं का उठना संभव है। अगर दिल में शंका रखकर काम करते रहेंगे, तो इस महान् कार्य के योग्य पर्याप्त उत्साह हम अपने में नहीं पायेंगे। इसलिए इस प्रश्न का विचार कर लेना उचित होगा। हम अच्छी तरह जानते हैं कि यह काम आसान नहीं है। परंतु सबसे पहला विचार तो हमें यह करना चाहिए कि जिस महान् उद्देश्य को लेकर ये यज्ञ चलाए जा रहे हैं, वह सिद्ध करने के योग्य है या नहीं। अगर है तो उसके लिए जी-जान से जुट जाने में ही पुरुषार्थ है। काम जितना कठिन है, उतना ही उसके लिए अधिक प्रयास करना होगा। उसे छोड़ देना मनुष्य के लिए शोभास्पद नहीं है। दूसरी बात यह है कि सर्वोदय का स्वप्न कभी साकार न हो, तो भी ये यज्ञ अपने आप में ही बहुत कल्याणकारी हैं। इसलिए इन्हें सफल करने में कोई कसर नहीं रहनी चाहिए।

असंभव नहीं है

साधु-संतों का प्रयास व्यर्थ नहीं गया। उनका मानव-समाज पर बड़ा ऋण है। अगर वे सदाचार की शिक्षा न देते, तो हमारी क्या दशा होती? उन्होंने हमें एक मंजिल तक पहुँचाया है, जहाँ से उनकी सीख दीप-स्तंभ की तरह हमें चेतावनी देती हुई आगे का मार्ग बताती है। उन्हीं की बातें हमें आज की भाषा में समझनी होंगी। उन्होंने हमें आध्यात्मिक दृष्टि से समझाया, जो मनुष्य के सुधरने का और नैतिक बनने का मूलभूत आधार है। परंतु अब समाज इतना पेचीदा बन गया है कि हमें व्यावहारिक दृष्टि का भी ध्यान रखना होगा। ईशावास्यमिदं सर्वम् की बात सही है। कुछ संप्रदायों में यह संकल्प भी कराया जाता है कि मेरा जो कुछ है वह ईश्वर को अर्पण है। पर प्रश्न यह है कि जगत् में ईश्वर का प्रतिनिधि कौन है? मैं अपने को

ही ईश्वर का प्रतिनिधि क्यों न मानूँ और मनमाने ढंग से संपत्ति आदि का उपयोग करूँ, तो मुझे कोई मना क्यों करे ? वस्तुतः ईश्वर का सच्चा प्रतिनिधित्व समाज की ओर आना चाहिए । हमें समझना चाहिए कि हमारे पास जो कुछ है, वह समाज की कृपा का फल है, इसलिए उसका लाभ समाज को मिलना चाहिए । यह केवल कल्पना की बात नहीं है, वस्तुस्थिति है । इस पुस्तिका में यही तत्त्व समझाने की कोशिश की गयी है । साधु-संतों ने सबके प्रति समभाव रखने को कहा, परंतु साथ ही यह भी कहा कि व्यक्ति को जो दुख भोगना पड़ता है, वह उसकी किस्मत का खेल है । वास्तव में बहुत-सी विषमता या कष्ट मनुष्य निर्मित सामाजिक व्यवस्था के कारण है । अब यह मानने का समय आ गया है कि मनुष्य के प्रयत्न से उसमें परिवर्तन हो सकता है, ताकि सुख हो तो सब बाँट लें और दुख हो तो सब सहन करें। यह न्याय नहीं है कि कुछ लोग सुख-चैन में रहें और करोड़ों कष्ट में ।

फिर भी मनुष्य की स्वार्थवृत्ति इतनी प्रबल है कि अगर उसका सुधरना केवल व्यक्ति के अधीन हो तो हम बुराई के मिटने की आशा कम ही रख सकते हैं । मनुष्य की मानवता पर हमें भरोसा रखना चाहिए । पर प्रश्न अधिकांश समाज के यथासंभव जल्दी सुधरने का है । इस दृष्टि से यह बात ध्यान में रखने लायक है कि मनुष्य जो सुधरता है, वह कुछ अपने विवेक से, कुछ समाज की विचारधारा के दबाव से । जरायम पेशा जातियों में चोरी करना दोष नहीं माना जाता; बाकी सारे समाज में वह दोष माना जाता है । यह परिणाम उस समाज की विचारधारा का है, जिसमें हम रहते हैं । अगर पहले लिखे मुताबिक सम्पत्ति और विद्या-बल के बारे में समाज में विचारधारा बदल जाय, तो उनका उपयोग समाज-हित में होना बहुत कुछ संभव है । साम्यवाद के आधे जगत् ने यह विचार मान लिया है । पूंजीवाद के

जगत् ने भी यह मान लिया है कि राज्य को कल्याणकारी होना चाहिए, जिसमें हर एक को सर्वसाधारण आवश्यक चीजें मिल ही जानी चाहिए, ताकि कोई भी कष्ट में न रहे। जगत में जो हवा चल रही है, उससे भारत अछूता कैसे रह सकता है ? और चूँकि भारत में नब्बे प्रतिशत लोग दरिद्रावस्था में हैं, इसलिए इस विचार का दृढ़मूल होना कठिन नहीं है। वे गरीब लोग अपने हक की भाषा तो समझ ही सकते हैं; उन्हें उनके कर्तव्य की भाषा भी समझानी है। यज्ञ में योग देने के लिए उनकी गरीबी के कारण उनको प्रत्यक्ष में आर्थिक त्याग तो थोड़ा-सा ही करना पड़ेगा, पर इतना आवश्यक है कि वे त्याग का महत्त्व समझ लें। वे अपनी ओर से थोड़ा-सा भी त्याग किये बगैर केवल श्रीमंतों से ही त्याग की अपेक्षा रखेंगे तो काम नहीं होगा। इसीलिए इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि गरीब भी इन यज्ञों में शरीक हों।

विचार में बड़ी शक्ति होती है। अगर बहुजन समाज के विचार का प्रवाह सही दिशा से चलता है, तो समाज-परिवर्तन की शंका नहीं रहनी चाहिए। पर यह पूछा जाता है कि इस प्रक्रिया में कितना समय लगेगा, कहाँ तक धीरज रखें ? क्रांति इस प्रकार मंदगति से नहीं हो सकती। क्या हिंसा या कानून से काम जल्दी हो सकता है ? अनुभव तो यही बताता है कि इन दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं में काफी समय लगता है। फिर मनुष्य व्यक्तिगत रूप से ज्यों का त्यों भला-बुरा बना रहता है, सो अलग। इस जमाने में विचारों का परिवर्तन भी बड़े वेग से हो रहा है। दूर-दूर का संपर्क काफी बढ़ गया है। जिस बात के लिए पहले सौ वर्ष लगते थे, वह अब दस-पन्द्रह वर्षों में हो सकती है। पुराने जमाने में प्रक्रिया अधिकतर व्यक्तिगत रूप से होती थी, अब सामूहिक रूप से होने लगी है। बहुजन समाज मानने लगा है और

चाहता है कि विषमता न रहे, समानता आये। फिर भी कानून के लिए इनकार तो नहीं है। वह जन-मानस बदलने पर ही कामयाब हो सकता है। इसलिए समझा-बुझाकर और यज्ञों के रूप में आचरण कराकर समाज को बदलने का प्रयत्न हो रहा है। यह समझना गलत है कि हिंसा या कानून के सिवा भौतिक परिस्थिति और मानस बदलवाने का जनता के पास दूसरा कोई उपाय नहीं है। महात्माजी ने प्रयोग करके साबित कर दिया है कि सत्याग्रह हिंसा का स्थान ले सकता है, उससे भौतिक स्थिति बदलने के साथ-साथ मनुष्य का मानस भी बदलता है।

भारत में आज जनतंत्रात्मक राज्यसत्ता चल रही है। इसका तरीका भी यही है कि विभिन्न दलवाले अपनी-अपनी विचारधारा जनता को समझाकर उसके विचार बदलना चाहते हैं। यह प्रक्रिया भी वास्तव में विचार परिवर्तन की ही है, न कि केवल कानून बनाने की।

ऊपर की बातों पर गहरा विचार करने पर कार्यकर्ताओं को विश्वास हो जाना चाहिए कि महात्माजी और विनोबाजी के बताये हुए रास्ते पर चलने से हम अपना उद्देश्य सिद्ध करने में सफल हो सकेंगे। न्याय की पुकार है—जमाने की माँग है, वह रुक नहीं सकेगी। अहिंसा का मार्ग ही कल्याणकारी है।

व्यक्तिगत मालिकी हक

ऊपर लिखे मुताबिक विचार परिवर्तन में व्यक्तिगत संपत्ति के मालिकी के हक के बारे में आमूल परिवर्तन होना आवश्यक है। सोच-विचार कर देखा जाय, तो धन कमाना तो दूर रहा, समाज के सहयोग और मदद के बिना मनुष्य जिंदा भी नहीं रह सकता। अगर किसी को अपने पुरुषार्थ का घमंड हो तो वह जंगल में अकेला रहकर देखे। मनुष्य

समाज में रहता है, एक-दूसरे की मदद होती है, तव ही वह अपनी आजीविका चला सकता है। गरीब मजदूर को भी मालिक कुछ काम ेता है तब उस मजदूर का पेट भरता है और मजदूर की मदद से मालिक का काम वन आता है। व्यापारी को कोई चीज बेचता है और उससे कोई चीजें खरीदता है, तब उसका व्यापार चलता है। कारखाने में भी अनेक तरह के लोग सहयोग देते हैं, तब कारखाना चलता है। वीमारों के कारण डाक्टरों का काम चलता है और संपत्ति के झगड़ों के कारण वकीलों का। इसी प्रकार सब धंधे परस्पर के सहयोग से चलते हैं, जिनसे मनुष्य की उपजीविका सधती है। जव मेरा शरीर-बल, बुद्धि-बल और संपत्ति-बल समाज पर ही निर्भर है तो इन पर केवल व्यक्तिगत मालिकी या अधिकार समझना न्यायसंगत कैसे हो सकता है ?

अगर हमारा स्वार्थ हमें दूसरी ओर न खींचे तो इस निर्णय पर आना आसान होगा कि निज के लिए आवश्यकता से अधिक धन कमाना और अधिक संपत्ति पर व्यक्तिगत मालिकी हक समझना उचित नहीं है। मालिकी हक का समाज के हित में विसर्जन हो यानी उसका उपयोग और अपनी बुद्धि का भी उपयोग समाज को मिले यह माँग न्याय्य है और कानून में या समाज की मान्यता में जो व्यक्तिगत मालिकी हक की विचारधारा चल रही ह उसमें परिवर्तन होना जरूरी है, अर्थात् इस धारणा पर आना होगा कि संपत्ति व्यक्ति की न रहकर, समाज-हित के लिए हो।

कुछ गैर-समझ

जव धनिक लोगों से संपत्तिदान-यज्ञ के वारे में चर्चा की जाती है, तव कहीं-कहीं उनकी ओर से कहा जाता है कि वे सरकार को भारी टैक्स देते हैं, जिसका उपयोग आखिर जनता के हित में ही होता है।

उसे एक प्रकार से हमारा संपत्तिदान क्यों न समझा जाय ? इसी प्रकार कभी-कभी यह भी बहस होती है कि संपत्ति-दान-यज्ञ सरकार की आर्थिक-वसूली का प्रतिद्वंद्वी है। सरकार कर-वसूली से धनिकों की आमदनी काटती है, वैसे ही संपत्ति-दान भी उनकी आमदनी काटता है; दोनों प्रक्रियाओं का आपस में द्वंद्व है। इसलिए संपत्तिदान-यज्ञ चलाना उचित नहीं है। वास्तव में ये दोनों दलीलें यज्ञ का सही अर्थ न समझने का परिणाम है। सरकार के पास जो कुछ पैसा जाता है, वह खुशी से नहीं, जबरदस्ती से जाता है। देनेवाले बच निकलना चाहते हैं। आर्थिक व्यवस्था में शुद्धता आने की जगह अशुद्धता बढ़ती है। उक्त दलील में यही मान लिया गया दीखता है कि भूदान और संपत्ति-दान-यज्ञ केवल भौतिक चीजें, हस्तांतरित करने के लिए हैं। वास्तव में उद्देश्य तो अलग ही है, जिसका विवेचन ऊपर किया गया है।

संपत्ति-दान की मात्रा और उद्देश्य

परिवार के व्यक्तियों की औसत संख्या पाँच मानकर दरिद्रनारायण के रूप में वाहर के एक व्यक्ति को अपने हृदय में स्थान मिले, इस आशय से यह सूचना है कि फिलहाल संपत्ति-दान में आय का छठा हिस्सा दिया जाय। यह हिस्सा केवल एक साल या एक ही बार नहीं, जीवन भर देनें की बात है। क्योंकि अगर संपत्ति हम जीवन भर अपने पास रखते हैं, या जीवन भर कमाई करते हैं तो वह पहले बताये मुताबिक समाज की देन होने के कारण, समाज का उस पर सदा हक पहुँचता है।

मोटे तौर पर जीवन भर संपत्तिदान देते रहना भारी लगना संभव है, परंतु यह प्रक्रिया अंतःकरण-शुद्धि की है, वह हमारे जीवन में संयम लाने में मदद करेगी, उसमें स्वयं प्रेरणा से स्वयं पर नियंत्रण आता है। इसके न होने से समाज में क्या चल रहा है ? जिनके पास करोड़ की संपत्ति है वे दो करोड़ बनाने में जी-जान से लग रहे हैं। साधन की शुद्धता का शायद ही ख्याल रहता है। इतना धन कमाने की जरूरत क्या है, इस धन का क्या करेंगे, इसमें खुद का कल्याण है या नहीं, इसका विचार कितने लोग करते हैं ? धनिकों को अपने काम-काज में व्यस्त रहने के कारण देश-सेवा के लिए फुरसत नहीं, गरीबों को पेट भरने की चिंता के कारण अवकाश नहीं, मध्यम वर्ग बढ़ी हुई महँगाई के कारण त्रस्त है। देश-सेवा के काम के लिए कुछ अपवाद रूप थोड़े से ही मिलते हैं। इस दशा में हमारी प्रगति कैसे हो ? वास्तव में सबसे अधिक सुविधा उन धनिकों को है, जिनके परिवार में काफी लोग हैं,

जिनमें से कुछ काम-काज सँभालने लायक हैं। उन्हें अपनी धार्मिक परंपरा के अनुरूप समयानुकूल वानप्रस्थाश्रम स्वीकार कर गरीबों की सेवा में लग जाना चाहिए। परन्तु संसार की तथा धन की लालसा इतनी तीव्र है कि मरने तक इन वन्धनों से छूटने का हम विचार तक नहीं करते।

संपत्ति-दान की सार्मयिकता

संपत्तिदान की रकम किसी दूसरे के सुपुर्द नहीं करनी है; खुद ही खर्च कर उसका हिसाव भेज देना है। इस खर्च के विनोवाजी ने तीन उद्देश्य वताये हैं :—

(१) भूदान-यज्ञ के सिलसिले में जिन भूमिहीनों को जमीन दी जायगी उनके लिए साधन-सामग्री;

(२) जो गरीब कार्यकर्ता इन यज्ञों में या ग्राम-सेवा में लगेंगे, उनका निर्वाह;

(३) सत्साहित्य का प्रचार।

इस योजना में दाता पर पूरा विश्वास रखा गया है। ट्रस्टीशिप की विचारधारा अमल में लाने में यह एक कारगर कदम साबित होगा।

धनिक लोग कुछ-न-कुछ दान तो करते ही रहते हैं, कुछ शायद अपनी आय के छठे हिस्से से भी अधिक करते होंगे। पर यह दान खुद की प्रेरणा से न होकर प्रायः पर-प्रेरित होता है। कुछ विशिष्ट लोग माँगने को आते हैं, तो इन्कार नहीं कर सकते; जिस काम के लिए दान दिया जाता है वह चाहे उन्हें पसन्द न भी हो। ऐसा दान, लेनेवाले और देनेवाले, दोनों के लिए अप्रिय रहता है। इसके वदले अगर ऐसा नियम वना लिया जाय कि हर साल आय का अमुक हिस्सा दान

किया जायेगा, तो दाता खुद सोचेगा कि कौन-कौन से काम उसके दान के लायक हैं। जो काम उसे प्रिय होगा, उसके लिए खुद सोच-समझकर वह अपने दान की रकम खर्च करेगा और अपने प्रिय उद्देश्य को सफल होते देखेगा। कुछ व्यापारियों में यह परम्परा रही है कि वे अपनी आमदनी का एक निश्चित हिस्सा दान-धर्म के लिए हर साल अलग रखते रहें। कुछ जैन भाई अमुक मात्रा से अधिक संपत्ति संग्रह न करने का व्रत भी लेते हैं। ऐसी पद्धति को सम्पत्ति-दान-यज्ञ व्यापक बनाना चाहता है। पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि पुरानी पद्धति में संपत्ति पर अपना हक मानकर दया के रूप में दूसरे को मदद करने की बात थी। संपत्ति-दान-यज्ञ में, इससे उल्टे संपत्ति की निजी मालिकी न मानकर समाज की मानकर उसे खर्च करना है। पुरानी पद्धति में एक बड़ा दोष यह आ गया है कि वह समयानुकूल नहीं रही है। सात्त्विक दान तो वही समझा जा सकता है कि जो 'देशे काले च पात्रे च' हो। विनोबाजी ने सम्पत्ति-दान के जो उद्देश्य बताये हैं, वे देश की वर्तमान परिस्थिति में बहुत उपयुक्त हैं। अभी धनिकों द्वारा जो दान होता रहता है उसका लाभ प्रायः शहरी मध्यम वर्ग के लोगों को ही मिलता है। वास्तव में दान गरीब-से-गरीब के पास पहुँचना चाहिए। विशेषकर देहात के लोगों को, जिनकी संख्या भारत में ८०% है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जिसको दान दिया जाता है, वह पंगु न बने, बल्कि काम में लगकर स्थायी रूप से अपनी आजीविका अपने श्रम से सम्मानपूर्वक चला सके। भूदान-यज्ञ और सम्पत्ति-दान-यज्ञ से यह बात विशेष रूप से सधती है।

•

परिशिष्ट

परिशिष्ट—क

संपत्ति-दान-यज्ञ के बारे में जानकारी

१९५४ के अप्रैल महीने में बोधगया के सर्वोदय-समाज के सम्मेलन के समय संपत्तिदान-यज्ञ की तफ़सील के बारे में कुछ सोचा गया था और उसका एक पत्रक प्रकाशित भी किया गया था। उसके बाद मार्च '५५ के पुरी-सम्मेलन के समय भी उस विषय में कुछ अधिक चर्चा और विचार हुआ। अब तक ऐसा जो कुछ विचार हुआ है, उसकी मुख्य बातें नीचे मुताबिक हैं :—

सिद्धान्त

भूमिदान-यज्ञ के पीछे जो सिद्धान्त है, वही संपत्तिदान-यज्ञ में भी है। अर्थात् ऐसे जमीन किसी की व्यक्तिगत मालिकी की न होकर समाज की होनी चाहिए। वैसे ही संपत्ति पर भी किसी व्यक्ति का एकाधिकार न रहकर यह मानना चाहिए कि वह समाज की मालिकी की और समाज के हित के लिए है। समाज के हित में व्यक्ति का हित भी शामिल है। अर्थात् व्यक्ति सादगीमय जीवन को दृष्टि में रखकर अपने निर्वाह जितना ही उसका उपयोग कर सकता है। मतलब यह है कि मनुष्य के पास जो कुछ शरीर का, विद्या का या धन-संपत्ति का बल है, वह उसने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष समाज से पाया है। इसलिए उसका उपयोग समाज के हित के लिए होना चाहिए, जिसमें अपने निर्वाह का होनेवाला उपयोग भी शामिल है। यह हुई संपत्तिदान के उपयोग की बात। जहाँ तक संपत्ति प्राप्त करने का सवाल है, उसका जरिया शरीरश्रम होना चाहिए, ताकि शोषण और विषमता की गुंजाइश न रहे। संपत्ति-उपार्जन का साधन भी शुद्ध रहना चाहिए।

संपत्तिदान का स्वरूप

ऊपर लिखा विचार प्रस्थापित कर अमल में लाने की दृष्टि से पहले कदम के तौर पर संपत्तिदान का स्वरूप अभी यह रखा गया है कि दाता अपनी आमदनी का या किसी कारणवश यह संभव न हो तो अपने गृहस्थी-व्यय का एक हिस्सा समाज के लिए अर्पण करता रहे। वह हिस्सा व्यक्ति के आमदनी के परिमाण पर अवलंबित रहे और वह उत्तरोत्तर बढ़ता जावे। दरिद्रनारायण को अपने परिवार का एक सदस्य मानकर फिलहाल आमदनी का छठा हिस्सा और व्यय का हो, तो पाँचवाँ हिस्सा एक सामान्य परिमाण माना जाय। गृहस्थी-खर्च में खान-पान, निवास आदि के अलावा बालकों की शिक्षा, विवाह आदि प्रसंगों के खर्च भी शामिल समझने चाहिए। आमदनी से मतलब इन्कम-टैक्स आदि अनिवार्य खर्च बाद करके तमाम जरियों से होनेवाली आमदनी समझना चाहिए। छठा हिस्सा माँगा जाता है, पर यह कोई टैक्स नहीं है। इसलिए दाता अपनी इच्छा के अनुसार कम-ज्यादा हिस्सा भी दे सकता है; तथापि जिनकी आमदनी बहुत है, उन्हें अधिक फर्क नहीं करना चाहिए। जिनकी आमदनी बिल्कुल निर्वाह जितनी ही है या उससे भी कम है, उन्हें भी संपत्तिदान-यज्ञ में जरूर शामिल होना चाहिए। पर उनका हिस्सा प्रतीक के तौर पर ही रह सकता है। अभी संपत्तिदान में हिस्से की बात रखी गयी है, पर लक्ष्य तो यह है कि अपनी सारी संपत्ति समाज की है, ऐसा समझकर व्यक्ति समाज की ओर से उसके ट्रस्टी के तौर पर व्यवहार करने को तैयार हो।

किसान अपना संपत्तिदान अनाज के रूप में दे सकता है।

संपत्तिदान का खर्च

संपत्तिदान की रकम किसी दूसरे को नहीं देनी है। दाता खुद

खर्च करे। केवल हर साल एक बार उसका हिसाब सर्व-सेवा-संघ को भेज देना चाहिए। संपत्तिदान की रकम खर्च करने के उद्देश्य पू० विनोबाजी ने ये बताये हैं :—

(क) जिन भूमिहीनों को जमीन दी जायगी, उनको बीज, बैल, कुआँ आदि के रूप में साधन-सामग्री मुहैया करना तथा भूदान-यज्ञ में प्राप्त हुई जमीन के तैयार करने में मदद करना।

(ख) भूदान-मूलक ग्राम-सेवक-वर्ग को अल्पतम निर्वाह-व्यय देना।

(ग) सर्वोदय-साहित्य का प्रचार करना।

इनके अलावा विनोबाजी अथवा सर्व-सेवा-संघ दूसरे उद्देश्य बढ़ा सकेंगे। इन उद्देश्यों में से किस पर कितना खर्च करना, यह दाता की इच्छा पर अवलम्बित रहे। कई सज्जनों का कहना है कि इन उद्देश्यों के अलावा और भी अनेक सार्वजनिक समाज-हित के लिए उन्हें कुछ-न-कुछ खर्च करना ही पड़ता है। इसलिए यह व्यवस्था सोची गयी है कि दाता चाहे तो संपत्तिदान की रकम में से एक-तिहाई ($\frac{1}{3}$) तक का हिस्सा अपनी इच्छा के अनुसार दूसरे समाज-हित के कामों में खर्च कर सके और कम-से-कम दो-तिहाई ($\frac{2}{3}$) हिस्सा संपत्तिदान के ऊपर लिखे उद्देश्यों के अनुसार खर्च करे।

चन्दे को प्रोत्साहन नहीं देना है

अक्सर यह पाया जाता है कि दाता लोग भूदान-यज्ञ के काम में आर्थिक सहायता करने के इच्छुक तो हैं, परंतु वे संपत्तिदान-यज्ञ के रूप में संकल्प करने को तैयार नहीं होते। विना संपत्तिदान-यज्ञ के संकल्प के केवल आर्थिक सहायता करने को एक प्रकार से चंदा ही कहना

चाहिए। ऐसे चंदे को प्रोत्साहन नहीं देना है। हमें जो कुछ प्रयत्न करना है, वह संपत्तिदान-यज्ञ के रूप में ही करना है।

भूमिहीनों को साधन

भूदान-वितरण में जिन्हें जमीन मिली हो, ऐसे भूमिहीनों को साधन देने में संपत्तिदान का उपयोग करना चाहनेवाला दाता यथासंभव खुद ही बैलजोड़ी, हल, औजार, बीज, कुआँ आदि की मदद उन भूमिहीनों को पहुंचावे, न कि पैसे के रूप में। अगर खुद के लिए यह संभव न हो तो प्रांतीय भूदान-समितियों से इस बारे में मार्गदर्शन और सहयोग लिया जा सकता है।

कार्यकर्ताओं को निर्वाह-व्यय

सेवक-वर्ग को निर्वाह-व्यय देने में संपत्तिदान का उपयोग करना हो, तो उसका अच्छा रास्ता यह होगा कि दाता वह रकम सर्व-सेवा-संघ की मार्फत खर्च करे। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में इसकी व्यवस्था किस प्रकार हो, यह सर्व-सेवा-संघ तय करे।

सर्वोदय साहित्य-प्रचार

साहित्य के प्रचार के बारे में साहित्य मुफ्त बाँटने की पद्धति न रहे, पर वह कम कीमत में बेचा जा सकता है। किसी वर्ग-विशेष, विद्यार्थी या कार्यकर्ता आदि को अधिक रिआयत दी जा सकती है। सार्वजनिक पुस्तकालयों, वाचनालयों को मुफ्त भी दिया जा सकता है। सर्वोदय-साहित्य में किन पुस्तकों का समावेश हो, उसका निर्देश पू० विनोबा-जी से मिले। इस प्रकार के साहित्य की एक सूची बन जानी चाहिए। [फिलहाल इसमें सर्व-सेवा-संघ द्वारा प्रकाशित साहित्य ही माना जाये।]

संपत्तिदान-यज्ञ के बारे में जो कुछ उद्देश्य ऊपर लिखे गये हैं उनमें से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्या करना चाहिए, यह दाता जानना चाहे तो प्रांतीय भूदान-समितियाँ उनका मार्ग-दर्शन करें और उद्देश्य सफल करने में सहयोग भी दें।

संपत्तिदान के कुछ विशेष उपयोग

(१) यदि कोई सवर्ण किसी हरिजन बालक को अपने घर में अपने परिवार का मानकर रखे और उसकी पूरी जिम्मेवारी उठाये, तो उस हद तक वह खर्च संपत्तिदान माना जाय।

(२) जहाँ संस्थाओं में कार्यकर्ता या शिक्षक एकत्र रहते हैं और उनके वेतन आदि में निश्चित ग्रेडों के हिसाब से एक-दूसरे में काफी अंतर रहता है, वहाँ अगर वे सब अपनी आय एक जगह इकट्ठी कर लें और फिर प्रत्येक परिवार की सदस्य-संख्या के हिसाब से बाँट लें तो यह संपत्तिदान का उत्तम स्वरूप होगा। फिर संपत्तिदान में सम्मिलित कोष में से, भले ही वे केवल प्रतीक के रूप में थोड़ा-सा ही दें।

(३) गरीबों के संपत्तिदान की रकम थोड़ी-सी ही होगी। उसका ऊपर लिखे उद्देश्यों के अनुसार दाता को खुद खर्च करना मुश्किल हो सकता है। इसलिए जहाँ ऐसी दान की रकम वार्षिक रुपये २५) तक होती है, वहाँ नीचे लिखी व्यवस्था सोची गयी है।

क—जो खादीधारी नहीं ह, उनके द्वारा प्रमाणित खादी खरीदी जाने पर वार्षिक रकम रुपये ५०) तक की मर्यादा में खरीद-मूल्य का आधा संपत्तिदान मान लिया जाय।

ख—ग्रामोद्योगी तेल, चावल, शक्कर, जूते, चप्पल और गाय के घी की खरीद-कीमत का चौथाई संपत्तिदान माना जाय।

ग—हाथ-पिसे आटे के इस्तेमाल में अगर पिसाई मजदूरी से की हो, तो एक आना सेर तक की पूरी मजदूरी संपत्तिदान में गिनी जाय।

उपरोक्त व्यवस्था इस दृष्टि से रखी गयी है कि खादी-ग्रामोद्योग हमारी नयी समाज-रचना के आवश्यक अंग हैं। उनका व्यापक प्रचार हो और खादी के तथा ग्रामोद्योगी वस्तुओं के लिए उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ बाजार प्राप्त हो।

घ—हिंदी छोड़कर अन्य भाषाओं में निकलनेवाला सर्वोदय या भूदान-पत्रिकाओं में से किसी एक का चंदा ग्राहक का संपत्ति-दान माना जाय।

ङ—'सर्वोदय स्वाध्याय योजना' के जो सदस्य बनते हैं, वे रुपये १०) मूल्य में से रुपये ५) संपत्तिदान में गिन सकते हैं।

(४) जिनकी संपत्ति-दान की रकम वार्षिक रुपये १२) तक हो, वे उस रकम का उपयोग अपनी इच्छा के मुताबिक अकेले या उतना-सा ही दान देनेवाले दूसरे व्यक्तियों के साथ मिलकर किसी भी सार्वजनिक काम के लिए कर सकेंगे।

विविध

चर्चा में यह भी सवाल सामने आया था कि कई जगह व्यापारी लोग लेन-देन में लोगों से लाग के तौर पर अनिवार्य रीति से धर्मादा की रकम वसूल करते हैं, जिसके उपयोग का कोई खास निश्चित उद्देश्य नहीं होता। क्या कोई व्यापारी अपने पास जमा हुई धर्मादा की रकम में से संपत्ति-दान दे सकता है? राय यह रही कि ऐसी रकम में से संपत्ति-दान नहीं दिया जाना चाहिए।

एक यह प्रश्न भी उठा था कि अगर किसी व्यक्ति के पास काफी

जमीन है, पर भूदान-यज्ञ में जमीन न देकर केवल संपत्ति-दान देना चाहे, तो वह लिया जाय या नहीं ? राय यह रही कि वह न लिया जाय।

कार्यकर्ताओं को हिदायतें

१—भूदान-आंदोलन में काम करनेवाले हर कार्यकर्ता को संपत्ति-दान में शरीक होना चाहिए तथा यदि उसके पास जमीन हो, तो भूदान भी करना चाहिए।

२—जहाँ कहीं हम भूदान की माँग करते हैं या प्राप्त करने की कोशिश करते हैं, वहाँ संपत्ति-दान की माँग भी उतने ही आग्रह से करें।

३—हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिस किसीने भूदान में जमीन दी है, उसको भी संपत्तिदान-यज्ञ में शामिल होना चाहिए।

४—हम अक्सर अमीर और मध्यम स्थिति के लोगों से तो संपत्ति-दान के लिए प्रयत्न करते हैं, पर हमें गरीबों से भी संपत्तिदान प्राप्त करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। उनके दान की रकम थोड़ी-सी होगी। परंतु उससे एक व्यापक वातावरण तैयार होगा, इसका असर सब पर पड़ेगा।

५—ऊपर लिखा गया है कि जिनकी आमदनी बिल्कुल निर्वाह जितनी ही या उससे भी कम है, उन्हें भी संपत्तिदान-यज्ञ में शामिल होना चाहिए। पर उनका हिस्सा प्रतीक के तौर पर ही रहेगा। पूछा जाता है कि गरीबों का हिस्सा कितना रहे और अधिक आमदनी में संपत्तिदान का हिस्सा किस परिमाण में बढ़ता रहे ? इसका कुछ स्पष्टीकरण हो जाना उचित है। इसके अलावा, चूंकि संपत्तिदान का संकल्प लम्बे अरसे के लिए होता है और उसमें आमदनी का घटना-बढ़ना भी बहुत कुछ संभव है; इसलिए संकल्प करते समय जो आमदनी हो, उसमें आगे चलकर घटा-बढ़ी हो, तो उसके हिस्से का

परिमाण क्या रहे, इसका भी कुछ अंदाज रहना उचित है; ताकि बार-बार नया दानपत्र न भरकर दाता खुद उस परिमाण के अनुसार अपने हिस्से को घटा-बढ़ा सके। इसलिए यहाँ हिस्से के परिमाण का संकेत किया जा रहा है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यह कोई कानूनी टैक्स का परिमाण नहीं है। दाता अपनी परिस्थिति क अनुसार कुछ कमी-बेशी भी कर सकेगा। पू० विनोबाजी का तो कहना यही है कि दरिद्रनारायण को अपने घर का एक सदस्य मानकर उतना हिस्सा संपत्तिदान में देना चाहिए। वास्तव में संपत्तिदान की मात्रा वैसी ही होनी चाहिए। परंतु जिनकी आमदनी बहुत थोड़ी है, उनके लिए निर्वाह की अड़चन का ख्याल करते हुए कुछ परिमाण का संकेत कर देने की माँग है। इसलिए यहाँ परिमाण सुझाया जा रहा है। पर वह कम-से-कम है, ऐसा ही समझना चाहिए। जिसकी मासिक आमदनी रुपये ५०) तक है, वह प्रति रुपया एक पैसा अर्थात् चौसठवाँ हिस्सा, मासिक पचास रुपये के ऊपर और डेढ़ सौ तक की आमदनीवाला प्रति रुपया दो पसा अर्थात् बत्तीसवाँ हिस्सा, डेढ़ सौ रुपये से ढाई सौ तक की आमदनीवाला प्रति रुपया तीन पैसा अर्थात् बीसवाँ हिस्सा संपत्तिदान में प्रदान करे। इस प्रकार आगे प्रति सौ पर एक-एक पैसा बढ़ाकर फिलहाल पहले कदम ही के तौर पर छठे हिस्से के परिमाण तक पहुँचना चाहिए। जिनकी आमदनी खासी है, उनको तो इससे भी अधिक देना चाहिए।

६—संपत्तिदान और साधनदान, दोनों के लिए एक साथ प्रयत्न करने में कुछ पेचीदा परिस्थिति खड़ी हो जाती है। हमें साधनदान की अति आवश्यकता है। पर जब व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप से आम सभाओं में दोनों बातें एक ही साथ रखी जाती हैं, तो साधनदान आसान होने के कारण लोग उतना-सा ही स्वीकार कर लेते हैं और

संपत्ति-दान की बात पीछे पड़ जाती है। संपत्तिदान गहरी चीज है। हमारे आंदोलन में उसका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसके मुकाबिले में साधनदान गौण है। संपत्तिदान में बाधा पहुँचे, ऐसी बात न करना उचित होगा। इसलिए भूमि-वितरण के समय तो वहाँ के उपस्थित लोगों से साधनदान के बारे में आग्रहपूर्वक कहा जाय, ताकि जिनको जमीन दी जायगी, उनका एक साल का काम किसी प्रकार निभ जाय, पर अन्य सब मौकों पर संपत्तिदान पर ही जोर देना चाहिए।

७—यदि दाता चाहे कि उसके दान के हिस्से या आमदनी का अंदाज गुप्त रहे, तो कार्यकर्ताओं को सावधानी के साथ वैसा करना चाहिए और ांतीय दफ्तर में एक अलग रजिस्टर रहे, जो गुप्त माना जाय और जिसे प्रांतीय-समिति के मुख्य अधिकारी ही देख सकें।

अनुरोध

प्रार्थना की जाती है कि सबको संपत्तिदान-यज्ञ में योग देना चाहिए, चाहे वे गरीब हों या धनिक। विशेषकर राज्य-सत्ताधारी व सरकारी अधिकारी, व्यापारी और उद्योगपति तथा बुद्धि-प्रधान पेशों में लगे हुए लोगों से विशेष आशा रखी जाती है। मंत्रीगण, धारा-सभाओं के सदस्य, राजनैतिक और सामाजिक नेता आदि पर समाजहित की विशष जिम्मेवारी है। इसलिए वे इसमें अवश्य योग देवें। खुद इसमें शामिल होकर दूसरों को भी प्रेरणा दें।

परिशिष्ट—ख

संपत्ति-दान-यज्ञ की रूपरेखा

१ आय का अर्थ :—आय से आशय है इन्कमटैक्स जैसे अनिवार्य खर्च बाद होने पर सब जरियों से होनेवाली कुल आमदनी।

२ आय का कितना हिस्सा :—आय का कितना हिस्सा हो, इस बारे में तथा आय घटे-बढ़े तो उसमें कैसा फर्क किया जाय, इसके बारे मे संकेत नीचे मुताबिक है :

जिसकी आमदनी मासिक रुपये ५०) तक है वह प्रति रुपया एक पैसा अर्थात् चौसठवाँ हिस्सा, मासिक रुपये ५०) के ऊपर और डेढ़ सौ रुपये तक की आमदनीवाला प्रति रुपया दो पैसा अर्थात् बत्तीसवाँ हिस्सा, डेढ़ सौ रुपये से ढाई सौ तक की आमदनीवाला प्रति रुपया तीन पैसा अर्थात् बीसवाँ हिस्सा संपत्तिदान में प्रदान करे। इस प्रकार आगे प्रति सौ पर एक-एक पैसा बढ़ाकर फिलहाल पहले कदम के तौर पर छठे हिस्से के परिमाण तक पहुँचना चाहिए। जिनकी आमदनी खासी है, उनको तो इससे भी अधिक देना चाहिए।

किसान अपना संपत्तिदान अनाज के रूप में दे सकता है।

३ दान की रकम का उपयोग :—

(क) वार्षिक रुपये २५) क ऊपर

(१) भूदान-यज्ञ में जिन भूमिहीनों को जमीन दी जायगी, उनको साधन-सामग्री मुहैया करना तथा प्राप्त हुई जमीन के तैयार करने में मदद करना। (२) भूदान-मूलक ग्राम-सेवक को अल्पतम निर्वाह-व्यय देना। (३) सर्वोदय-साहित्य का प्रचार। (४) भविष्य

में विनोबाजी अथवा सर्व-सेवा-संघ दूसरे उद्देश्य शामिल करें तो उन पर खर्च करना।

अगर दाता चाहे तो दान की रकम का एक तिहाई ($\frac{1}{3}$) हिस्सा वह अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी सार्वजनिक हित के काम में खर्च कर सकता है, पर कम-से-कम दो-तिहाई ($\frac{2}{3}$) हिस्सा ऊपर लिखे उद्देश्यों में खर्च होना चाहिए। किस मद में कितना खर्च करे, यह दाता की इच्छा पर अवलंबित है।

(ख) वार्षिक रुपये २५) तक

जिसका संपत्तिदान रुपये २५) वार्षिक तक हो, वह अगर चाहे तो नीचे लिखे मुताबिक अपनी दान की रकम का उपयोग कर सकता है:

(१) जो खादीधारी नहीं है, उसके द्वारा प्रमाणित खादी खरीदी जाने पर वार्षिक रकम, रुपये ५०) तक की मर्यादा में खरीद-मूल्य का आधा संपत्तिदान मान लिया जाय।

(२) ग्रामोद्योगी तेल, चावल, शक्कर, जूते, चप्पल और गाय के घी की खरीद-कीमत का चौथाई संपत्तिदान माना जाय।

(३) हाथ-पिसे आटे के इस्तेमाल में अगर पिसाई मजदूरी से की हो तो एक आना सेर तक की पूरी मजदूरी संपत्तिदान में गिनी जाय।

(४) हिंदी छोड़कर अन्य भाषाओं में निकलनेवाला सर्वोदय या भूदान-पत्रिकाओं में से किसी एक का चन्दा ग्राहक का संपत्ति-दान माना जाय।

(५) 'सर्वोदय स्वाध्याय योजना' के जो सदस्य बनते हैं, वे रुपये १०) मूल्य में से रुपये ५) संपत्ति-दान में गिन सकते हैं।

(ग) वार्षिक रुपये १२) तक

जिनकी संपत्तिदान की रकम वार्षिक रुपये १२) तक हो, वे उस रकम का उपयोग अपनी इच्छा के मुताबिक अकेले या उतना-सा ही दान देनेवाले दूसरे व्यक्तियों के साथ मिलकर किसी भी सार्वजनिक हित के काम के लिए कर सकेंगे।

४ मार्गदर्शन और सहयोग :—संपत्तिदान की रकम का खर्च यथासंभव दाता खुद करें। दाता को अगर खर्च करने आदि के बारे में मार्गदर्शन की आवश्यकता हो, तो प्रांतीय भूदान-समिति से मार्गदर्शन तथा सहयोग लिया जाय।

———

परिशिष्ट—ग

संपत्ति-दान-यज्ञ का दानपत्र

पू० विनोबाजी ने भारतीय परंपरा के अनुसार आर्थिक क्रांति की अहिंसक प्रक्रिया को संपूर्ण रूप देने की दृष्टि से लोगों से भूमि के अलावा अपनी संपत्ति की आय का छठा हिस्सा देते रहने की माँग की है। भूमि न होने के कारण जो लोग भूमिदान-यज्ञ में हिस्सा नहीं ले सकते, उनके लिए भी अव इस पवित्र काम में शामिल होने का रास्ता खुल गया है। दरिद्रनारायण की सेवा के लिए किये गये उनके आवाहन पर मैं संपत्ति-दान-यज्ञ में शरीक होता हूँ और संपत्तिदान-यज्ञ की योजना के अनुसार उसमें अपना हिस्सा अर्पण कर उसका विनियोग करता रहूँगा तथा उसके खर्च का वार्षिक हिसाब सर्व-सेवा-संघ को भेजता रहूँगा।

अपने इस संकल्प का अंतर्यामी रूप में मैं ही साक्षी हूँ और अपनी अंतरात्मा से वफादार रहूँगा। ईश्वर मुझे बल दे।

मेरी वर्तमान आय का अंदाज रुपये वार्षिक / मासिक

फिलहाल हिस्से का परिमाण आय का हिस्सा......वाँ

तारीख............ ____________________

हस्ताक्षर

पूरा नाम और पता____________________

____

____

____

[सूचना : दानपत्र भरकर प्रांतीय भूदान-समिति के दफ्तर में भेज दिया जाय।]

सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना

कार्यकर्ताओं, जिज्ञासुओं और जनता में सर्वोदय-विचार के प्रचार की दृष्टि से 'सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना' शुरू की गयी है, जिसके अनुसार लोगों को कम से कम मूल्य में स्वाध्याय योग्य उत्तम नवीनतम साहित्य नियमित रूप से मिलता रहे। योजना की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है—

१. सभासद—संस्था या व्यक्ति हर कोई सभासद बन सकेगा।

२. शुल्क—इसका वार्षिक शुल्क दस रुपये है।

३. सुविधाएँ—(अ) वर्ष भर तक भूदान-यज्ञ, गया (हिन्दी) या उसके बदले भूदान संबंधी विभिन्न प्रांतों से निकलनेवाले साप्ताहिकों या पाक्षिकों में से एक भाषा का एक पत्र दिया जा सकेगा, जिसका शुल्क प्रायः तीन रुपया हो।

(आ) बाकी सात रुपयों में से एक रुपया डाकखर्च का माना है। शेष छह रुपयों में बारह रुपयों का हिन्दी भाषा का साहित्य दिया जायगा, जिसकी पृष्ठ-संख्या लगभग २५०० क्राउन साइज की होगी।

४. योजना का वर्ष—योजना का वर्ष १ जनवरी से ३१ दिसंबर तक माना गया है। सदस्य चाहे जब बन सकते हैं। साहित्य सब सदस्यों को समान रूप से दिया जायगा। भूदान पत्रिका सदस्य बनने के माह से वर्ष भर चालू रहेगी।

५. पूरी जानकारी प्राप्त करने का तथा शुल्क भेजने का पता—

संचालक, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन
राजघाट, काशी (बनारस)

नोट : जो सज्जन दूसरों को अपनी ओर से शुल्क देकर योजना का सदस्य बनावेंगे उनका पूरा शुल्क दस रुपया और जो स्वयं सदस्य बनेंगे उनका आधा यानी पाँच रुपया संपत्तिदान माना जायगा।

हमारे
कुछ
प्रकाशन